

\* ॐ श्रीपरमात्मने नमः \*

# कल्याण

मूल्य ८ रुपये



वर्ष  
९०

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या  
११

संसार-कूपमें पड़ा प्राणी





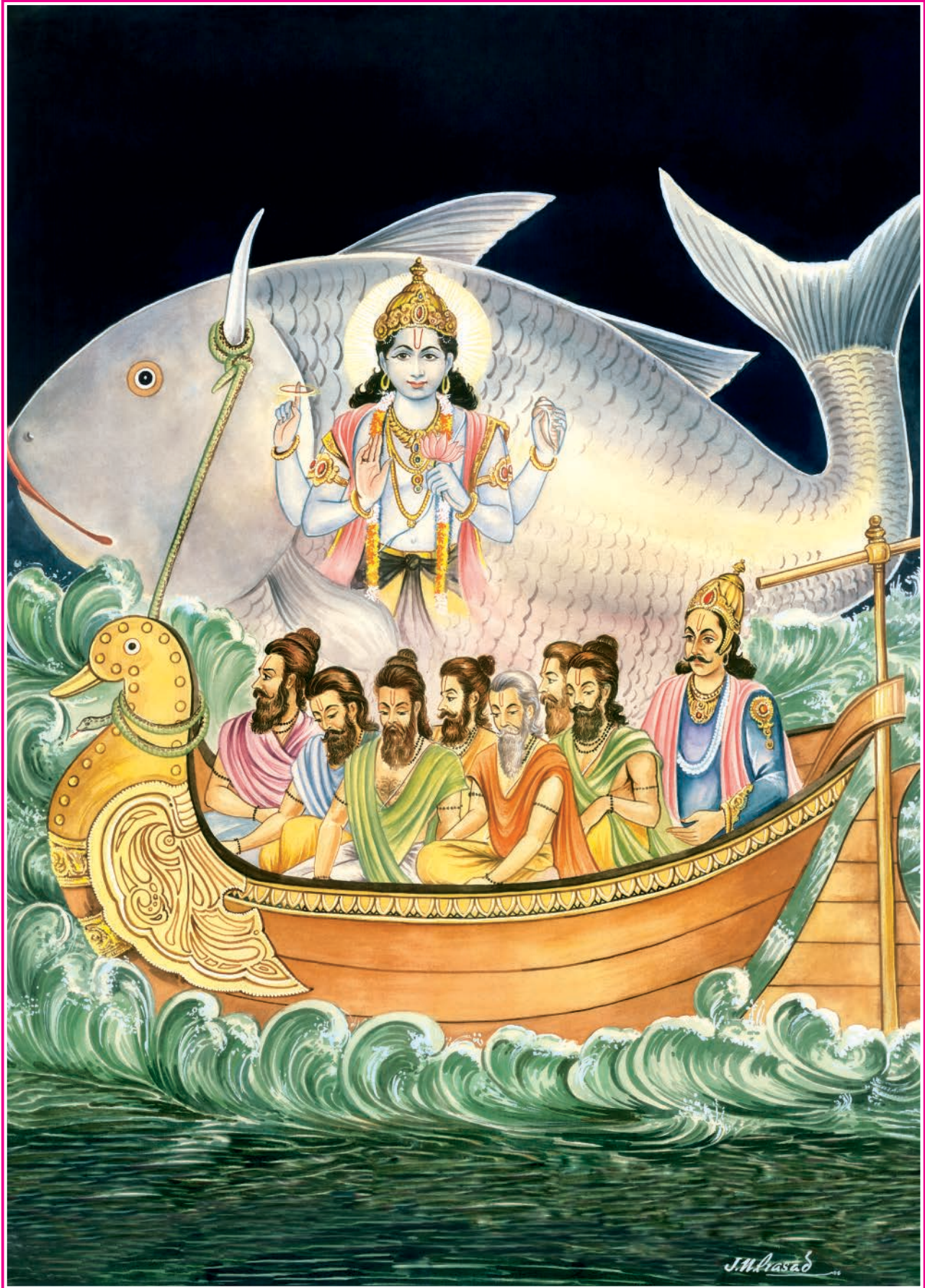
**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**  
  
**By**  
**Avinash/Shashi**

**Icreator of**  
**hinduism**  
**server!**





मत्स्यावतार

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



# कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः । नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते ॥  
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः । सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्त्यै ॥

वर्ष  
१०

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, नवम्बर २०१६ ई०

संख्या  
११

पूर्ण संख्या १०८०

## मत्स्यावतार

नैमित्तिक	लय	जब	भयो,	ब्रह्माजी	निद्रित	भये ।
सत्यव्रत	राजर्षि	हित,	श्रीहरि	मछली	बनि	गये ॥
हरि	हंसि	बोले—सात	दिन,	महँ	होवै	त्रैलोक्य लय ।
एक	होहिं	सातहुँ	उदधि,	जगत	होहि	सब सलिलमय ॥
सात	दिवस	जब	भये	भई	पृथिवी	जलमय सब ।
आई	नौका	एक	ऋषिनि	सँग	चढ़े	भूप तब ॥
बाँधी	शफरी	सींग	प्रलय	जलमहँ	बिचरै	हरि ।
पूछे	पावन	प्रश्न	नृपतिने	अति	बिनती	करि ॥
जो	जगमय	जगतेँ	पृथक,	देहिँ	ज्ञान	गुरु रूप धरि ।
गुरुके	गुरु	हरि	हो	तुमहिँ,	नाम	सुमिरि बहु गये तरि ॥

[ श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी ]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २, १५, ०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, नवम्बर २०१६ ई०

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- मत्स्यावतार .....	३	१५- श्रीसिद्धारूढ स्वामी [ संत-चरित ]	
२- कल्याण .....	५	( ह० भ० प० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्रजी पांगारकर ) .....	३०
३- संसार-कूपमें पड़ा प्राणी [ आवरणचित्र-परिचय ] .....	६	१६- उदार व्यवहार हर स्थितिमें प्रसन्नतादायक .....	३२
४- भगवान् के लिये काम कैसे किया जाय ?		१७- दानके दृष्टान्त [ कहानी ] ( श्रीरामेश्वरजी टाँटिया )	
( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका ) .....	७	[ प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टाँटिया ] .....	३३
५- परमार्थतः अजर-अमरके लिये रोना व्यर्थ		१८- पापका फल ( पं० श्रीआनन्दस्वरूपजी पाण्डेय ) .....	३५
( ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज ) .....	९	१९- हिंसाका कुफल ( श्रीलीलाधरजी पाण्डेय ) .....	३६
६- हे नाथ! हम तुम्हारे हैं		२०- मेरे वैरि-भावकी रक्षा करना	
( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) ..	१०	[ श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग ] ( आचार्य श्रीरामरंगजी ) ...	३७
७- कलियुगका परम साधन ( श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज ) .	१२	२१- संन्यासका अर्थ	
८- राजाको सीख .....	१४	( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज ) .....	३९
९- साधकोंके प्रति—		२२- दयाका पुरस्कार .....	३९
( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीराममुखदासजी महाराज ) .....	१५	२३- गोमूत्रमें छिपे जीवनसूत्र	
१०- प्रेमका पन्थ निराला है ! ( पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट ) .....	१८	[ संकलनकर्ता—श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल ] .....	४०
११- पुण्यप्रदर्शनका फल : बालि-प्रसंग		२४- साधनोपयोगी पत्र .....	४२
( पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय )		२५- व्रतोत्सव-पर्व [ मार्गशीर्षमासके व्रतपर्व ] .....	४४
[ प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता ] .....	२२	२६- व्रतोत्सव-पर्व [ पौषमासके व्रतपर्व ] .....	४५
१२- चित्त-शुद्धि ( तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजी महाराज ) ..	२४	२७- कृपानुभूति .....	४६
१३- कहानीका असर [ कहानी ] ( मास्टर श्रीपारसचन्दजी ) .....	२७	२८- पढ़ो, समझो और करो .....	४७
१४- विश्वका कल्याण हो .....	२९	२९- मनन करने योग्य .....	५०

## चित्र-सूची

१- संसार-कूपमें पड़ा प्राणी .....	( रंगीन ) ... आवरण-पृष्ठ	६- शबरीके अतिथि .....	( इकरंगा ) .....	२१
२- मत्स्यावतार .....	( " ) .....	७- महात्मा श्रीतैलंग स्वामी .....	( " ) .....	२४
३- संसार-कूपमें पड़ा प्राणी .....	( इकरंगा ) .....	८- श्रीसिद्धारूढ स्वामी .....	( " ) .....	३०
४- नृसिंह भगवान् की गोदमें प्रह्लाद .....	( " ) .....	९- शाहजीकी उदारता .....	( " ) .....	३३
५- पुण्यका पावनको समझाना .....	( " ) .....	१०- काश्मीरनरेशकी न्याय एवं धर्मप्रियता ..	( " ) .....	५०

एकवर्षीय शुल्क

सजिल्द ₹२२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें  
सजिल्द शुल्क } Air Mail

वार्षिक US\$ 50 (₹3000)

पंचवर्षीय US\$ 250 (₹15,000)

{ Us Cheque Collection  
Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

सजिल्द ₹१९००

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’, पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

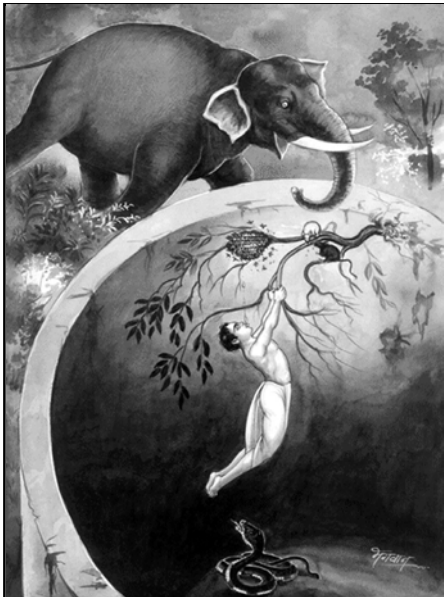
Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु- gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब ‘कल्याण’ के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।



‘शिव’

## संसार-कूपमें पड़ा प्राणी



भव-कूप—यह एक पौराणिक रूपक है, और है सर्वथा परिपूर्ण। इस संसारके कूपमें पड़ा प्राणी कूप-मंडूकसे भी अधिक अज्ञानके अन्धकारसे ग्रस्त हो रहा है। अहंता और ममताके घेरेमें घिरा प्राणी—समस्त चराचरमें परिव्याप्त एक ही आत्मतत्त्व है, इस परम सत्यकी बात स्वप्नमें भी नहीं सोच पाता।

कितना भयानक है यह संसार—कूप—यह सूखा कुआँ है। इस अन्धकूपमें जलका नाम नहीं है। इस दुःखमय संसारमें जल—रस कहाँ है। जल तो रस है, जीवन है; किंतु संसारमें तो न सुख है, न जीवन है। यहाँका सुख और जीवन—एक मिथ्या भ्रम है। सुखसे सर्वथा रहित है, संसार और मृत्युसे ग्रस्त है—अनित्य है।

मनुष्य इस रसहीन सूखे कुँएमें गिर रहा है। हो स  
कालरूपी हाथीके भयसे भागकर वह कुँआके मुखपर मधुव  
उगी लताओंको पकड़कर लटक गया है कुँएमें। लेकिन रम स  
कबतक लटका रहेगा वह ? उसके दुर्बल बाहु कबतक वह !

देहका भार सम्हाले रहेंगे। कुँएके ऊपर मदान्ध गज उसकी प्रतीक्षा कर रहा है—बाहर निकला और गजने चीरकर कूचल दिया पैरोंसे।

कुएँमें ही गिर जाता—कूद जाता; किंतु वहाँ तो महाविषधर फण उठाये फूत्कार कर रहा है। क्रुद्ध सर्प प्रस्तुत ही है कि मनुष्य गिरे और उसके शरीरमें पैसे दन्त तीक्ष्ण विष उँडेल दें। अभागा मनुष्य—वह देरतक लटका भी नहीं रह सकता। जिस लताको पकड़कर वह लटक रहा है, दो चूहे—काले और श्वेत रंगके दो चूहे उस लताको कुतरनेमें लगे हैं। वे उस लताको ही काट रहे हैं। लेकिन मूर्ख मानवको मुख फाड़े सिरपर और नीचे खड़ी मृत्यु दीखती कहाँ है। वह तो मग्न है। लतामें लगे शहदके छत्तेसे जो मधुबिन्दु यदा-कदा टपक पड़ते हैं, उन सीकरोंको चाट लेनेमें ही वह अपनेको कृतार्थ मान रहा है।

यह न रूपक है, न कहानी है। यह तो जीवन है— संसारके रसहीन अन्धकूपमें पड़े सभी प्राणी यही जीवन बिता रहे हैं। मृत्युसे चारों ओरसे ग्रस्त यह जीवन— कालरूपी कराल हाथी कुचल देनेकी प्रतीक्षामें है इसे। मौतरूपी सर्प अपना फण फैलाये प्रस्तुत है। कहीं भी मनुष्यका मृत्युसे छुटकारा नहीं। जीवनके दिन—आयुकी लता जो उसका सहारा है, कटती जा रही है। दिन और रात्रिरूपी सफेद तथा काले चूहे उसे कुतर रहे हैं। क्षण—क्षण आयु क्षीण हो रही है। इतनेपर भी मनुष्य मोहान्ध हो रहा है। उसे मृत्यु दीखती नहीं। विषय—सुखरूपी मधुकण जो यदा—कदा उसे प्राप्त हो जाते हैं, उन्हींमें रम रहा है वह—उन्हींको पानेकी ही चिन्तामें व्यग्र है

संसारकूपे पतितोऽत्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते । करावलम्बं मम देहि विष्णो गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

जो मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त और विषयोंकी ज्वालासे सन्तप्त है, ऐसे अथाह संसाररूपी कूपमें मैं पड़ा

हृदयानुष्मिन्ने दोषाणां सर्वे रोगविद् । हे दामोदर धर्माव । मादोषाणां तत्त्वो वेदो यदेजिनाश/Sh

## भगवान्‌के लिये काम कैसे किया जाय ?

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

**प्रश्न—**प्रसन्नतापूर्वक भगवान्का नाम समझकर भगवान्को याद रखते हुए किसीसे भी रागद्वेष न करके अपने कर्तव्यका पालन किस प्रकार किया जा सकता है ?

**उत्तर**—सब कुछ परमेश्वरका ही है, परमेश्वर ही खेल कर रहे हैं, परमेश्वर बाजीगर हैं, मैं उनका झमूरा हूँ, यों समझकर सब कुछ ईश्वरकी लीला समझते हुए, परमेश्वरके आज्ञानुसार आसक्ति और फलकी इच्छा छोड़कर, परमेश्वरकी सेवाके लिये उन्हींकी प्रेरणा तथा शक्तिसे प्रेरित होकर कार्य करता रहे। यह समझकर बार-बार गद्गद होता रहे कि अहा! मुझपर परमेश्वरकी कितनी अपार दया है कि मुझ-जैसे तुच्छको साथ लेकर भगवान् अपनी लीला कर रहे हैं। भगवान्‌के प्रेम, दया, प्रभाव, स्वरूप और तत्त्वपर बारम्बार विचार करता हुआ मग्न होता रहे।

(प्रेम) भगवान्‌के समान कोई प्रेमी नहीं है, वे प्रेमका इतना महत्त्व जानते हैं कि असंख्य ब्रह्माण्डके महेश्वर होते हुए भी अपनेको प्रेमीके हाथ बेच डालते हैं।

(दया) मैं कैसा नीच हूँ, कैसा निकृष्ट और महापामर हूँ, परंतु उस परम प्रभुकी मुझपर कितनी अपार दया है कि वे मुझको साथ लेकर लीला कर रहे हैं। प्रभुने सब पाप-तापोंसे बचाकर मुझे ऐसा बना लिया है।

(प्रभाव) प्रभुके प्रभावका कौन वर्णन कर सकता है, वे चाहें तो करोड़ों ब्रह्माण्डोंको एक पलमें उत्पन्न कर सकते हैं।

(स्वरूप) सारे संसारका सौन्दर्य मेरे प्रभुके एक रोमके समान भी नहीं है। वे आनन्दमूर्ति हैं। उनका दर्शन परम सुखमय है। वे चेतनामय महाप्रभु हैं। जैसे तारोंमें बिजली अनेक प्रकारसे कार्य कर रही है, वैसे ही प्रभुकी शक्ति सब कुछ कर रही है। वे विज्ञानानन्दधन परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं। वे ही विज्ञानानन्दधन प्रभु श्रीराम-कृष्णके रूपमें अवतार लेते हैं।

(रहस्य) उनका रहस्य कौन जान सकता है? वे सबमें समाये हैं, परंतु कोई उन्हें नहीं पकड़ पाता। भेदका नाम ही रहस्य है। भगवान् श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए, उस रूपमें बहुत लोगोंने उन्हें भगवान् नहीं समझा। कोई ग्वालबालक समझता था तो कोई वसुदेव-पुत्र। जो महात्मा पुरुष उनको भगवान्के रूपमें जान गये, उन्हींपर उनका रहस्य प्रकट हुआ। प्रभुके रहस्यको जान लेनेपर चिन्ता, दुःख और शोकका तो कहीं नाम-निशान ही नहीं रहता। प्रभु सब जगह विराजमान हैं, इस रहस्यको जानना चाहिये। अर्जुन भगवान्के रहस्यको कुछ जानते थे और उनसे रथ हँकवाते थे, परंतु वे भी भगवान्के विश्वरूपको देखकर भय और हर्षके मिश्रित भावोंमें डूब गये। तब भगवान्ने कहा 'भय मत कर!' जबतक अर्जुनको भय हुआ, तबतक उन्होंने भगवान्के पूरे रहस्यको नहीं समझा। पहचानना तो वस्तुतः यथार्थमें प्रह्लादका था। जो भगवान् नृसिंहदेवको विकराल रूपमें देखकर भी बेधडक उनके पास चले गये। प्रह्लादको



किंचित् भी भय नहीं हुआ। इसी प्रकार परमात्माके रहस्यको जाननेवाला सर्वदा सर्वत्र निर्भय हो जाता है।





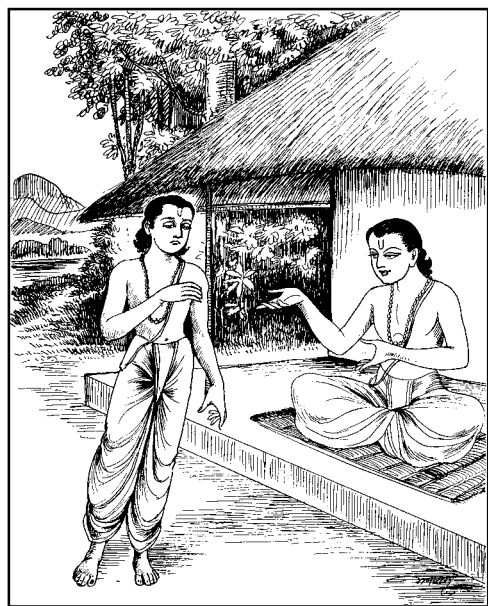
## परमार्थतः अजर-अमरके लिये रोना व्यर्थ

( ब्रह्मलीन धर्मसम्प्रदाय स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज )

श्रीभगवान् ही सार और सत्य वस्तु हैं। उन्हींसे मुख्य सम्बन्ध मानना उत्तम है। संसारके अन्यान्य सम्बन्धियोंका कुछ भी ठिकाना नहीं है। कर्मवश जीवात्मा अनादिकालसे अनन्त योनियोंमें भटकता रहा है। उनमेंसे उसका अनेक देशों, कालों, व्यक्तियों एवं वस्तुओंसे सम्बन्ध बनता और बिगड़ता रहता है। भगवान्की मायाका यह वैचित्र्य है कि प्राणीको नये जन्मके ही कुछ व्यक्तियों एवं वस्तुओंका सम्बन्ध स्मृत रहता है; अन्यान्य जन्मोंकी सब बातें प्रायः भूल ही जाती हैं। अन्यथा जब अविवेकी प्राणी एक ही जन्मके सम्बन्धियोंको स्मरण करके उनके शोक-मोहमें डूबकर रोता रहता है, तब फिर सर्वका बोध रहनेपर तो किस-किसके दुःखपर कितना रोया जाय।

इस सम्बन्धमें श्रीवसिष्ठजीने श्रीरामजीसे एक दृष्टान्त देकर कहा—रघुनन्दन! महेन्द्र नामक पर्वतपर दीर्घतपा नामक एक महर्षि अपनी पत्नीके साथ निवास करते थे। वे तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनके पुण्य और पावन नामके दो पुत्र थे। समय बीतनेपर उनका ज्येष्ठ पुत्र पुण्य सम्यक् ज्ञानसे सम्पन्न हो गया, किंतु छोटा पुत्र पावन यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ रहा। महर्षि दीर्घतपाने यथासमय अपना शरीर त्याग दिया और माताने भी यौगिक क्रियाद्वारा महर्षिका अनुसरण किया। माता-पिताके दिवंगत हो जानेपर ज्येष्ठ पुत्र धैर्यपूर्वक विवेकसे स्थिरचित्त हो अपना कर्तव्य करता रहा, किंतु रागमें आसक्त पावनका चित्त शोकसे व्याकुल हो गया। पिताके मरनेपर शोकाकुल पावनको उसके भाई पुण्यने बतलाया है कि भैया, यह सब मायाका विलास केवल स्वप्न ही है। हम, तुम, संसार—ये सब कल्पनाएँ दुर्दृष्टि ही हैं, परमार्थतः केवल सर्वसाक्षी सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही तत्त्व है। विचार करनेपर माता, पिता, बन्धु, सब कल्पना व्यर्थ है। यदि ये वस्तुएँ हों, तो फिर जन्मान्तरके सभी बन्धुओंके लिये रोना चाहिये। फिर तो पिछले किन्हीं

जन्मोंमें तुम सुपुष्पित वनस्थलीमें वृक्ष थे, कभी सिंह, कभी मस्त्य, कभी वानर, कभी वनवायस, कभी गर्दभ तो कभी पक्षी हुए थे, तबके बन्धुओंका भी स्मरण करो। कभी विन्ध्यपर्वतपर पिप्पल हुए थे। कभी महावटके घुण हुए थे, तो कभी मन्दराचलपर कुक्कुट हुए थे। फिर बर्फीले अश्म हुए। तालकन्दके भीतर तथा उदुम्बरके भीतरके कीट भी तुम हो चुके हो। इसी तरह कहाँतक गिनायें, कितने ही गिनायें तुम्हारे जन्म हुए हैं।



मेरा भी यही हाल है, मैं भी त्रिगर्त देशमें शुक हुआ। फिर मेढक, फिर वनका लावक पक्षी, विन्ध्यमें पुलिन्द, चातक, व्याघ्र और फिर गृध्र बना और फिर सिंह। वही मैं तुम्हारा अग्रज हूँ। विविध जन्म, विविध संसार, विविध चेष्टाएँ—सब-की-सब केवल भ्रान्ति हैं। कहना केवल इतना है कि अनन्त जन्मोंके अनन्त सुख-दुःख तथा सुख-दुःखकी सामग्रियों—बन्धु-बान्धवोंका कौन स्मरण करे, और कौन कितना किस-किसके लिये रोना रोये, जब परमार्थतः आत्मा सदा अजर-अमर एकरस है, परमानन्द कूटस्थस्वरूप है। अतः उसीमें प्रतिष्ठित होकर तद्भिन्नका संकल्प-चिन्तन छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

## हे नाथ! हम तुम्हारे हैं

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भार्जजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

यदि आप किसीको अपने मकानकी रजिस्ट्री कर दें और फिर उसपर अपना हक जमाने जायँगे तो आप निकाल दिये जायँगे। इसलिये उससे ममता आदि अपने-आप निकल जायगी। यह तो जबतक भगवान्‌में ममता नहीं होती है, तभीतक यह जगत्‌की ममता हमारे पीछे पड़ी रहती है। जब भगवान्‌ हमारे हो गये और हम भगवान्‌के हो गये तो हमारी ममताकी सारी चीजें भगवान्‌ छीन लेंगे और हमारी सारी ममता सब जगहसे निकलकर उन्हींमें जाकर केन्द्रित हो जायगी। यह जीवोंका सर्वोच्च लक्ष्य है। चाहे कोई इसे माने या न माने, परंतु जीव भगवान्‌का हो जाय तो उसकी सारी कामना, वासना, आसक्ति, ममता सब जाकर भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित हो जाय। भगवान्‌का हो जाय। तुलसीदासजी कहते हैं—  
या जगमे जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।  
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाँई॥

( विनय-पत्रिका १०३ )

यह प्रार्थना बड़ी सुन्दर है। उन्होंने कहा—इस जगत्‌में इस शरीरको लेकर जहाँतक प्रीति, प्रतीति और सगाई-प्रेम, विश्वास और आत्मीयता है, यह सारी-की-सारी प्रीति भगवान्‌ राघवेन्द्रमें लग जाय। सारा विश्वास भगवान्‌में जाकर समर्पित हो जाय और सारा अपनापन-आत्मीयता भगवान्‌से हो जाय।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।

एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

( दोहावली २७७ )

दूसरे किसीका भरोसा नहीं, दूसरेका बल नहीं, दूसरेका विश्वास नहीं, दूसरा कोई है ही नहीं। एक भगवान्‌ ही हमारे हैं। यह भगवान्‌ कैसे हैं ? जैसा आपका मन है, वैसे हैं। भगवान्‌से सम्बन्ध होनेमें जितनी सीधी बात है। वैसी जगत्‌में कहीं है ही नहीं। जिस रूपमें चाहे उस रूपमें हम उनका भज लें। जो सम्बन्ध चाहें, वह

सम्बन्ध बनायें। जब चाहें तब भज लें। जैसे चाहें वैसे भज लें। भगवान्‌ सब तरहसे अपने हैं और अपनातेको तैयार हैं। वे दोषोंपर ध्यान देते नहीं हैं। वे केवल गुणोंको देखते हैं। वे जरासे गुणपर रीझ जाते हैं और बड़े-से-बड़े दोषोंको भूल जाते हैं। यह भगवान्‌का स्वभाव है।

इसलिये भगवान्‌का स्वभाव देखकर हम लोगोंको स्वाभाविक ही उनका हो जाना चाहिये। यह जीवन जा रहा है। हम लोग यहाँपर इकट्ठे हुए हैं गंगाके तटपर। यह इसलिये नहीं कि दो-तीन महीने सैर करना है। मसूरी और नैनीतालके बदले ऋषिकेशमें रहना बड़ा अच्छा है। गंगा-स्नान भी हो जायगा, कुछ सत्संग भी सुन लेंगे। कुछ महात्माओंके दर्शन भी हो जायेंगे। यह अच्छा है, बहुत अच्छा है तथापि जब जीवनकी ओर देखना है तो इतनेसे काम नहीं चलेगा। हमें तो जीवनको लगा देना है भगवान्‌की ओर, तभी हमारे जीवनकी वास्तविक सार्थकता है। यहाँ आकर हमें कुछ छोड़ना चाहिये और वह छोड़नेकी एक ही चीज है अगर मनसे कर सकें कि जगत्‌की प्रीतिको छोड़ दें और भगवान्‌से प्रीति कर लें। विषयोंकी प्रीतिका परित्याग कर दें। यह होगा कैसे ? यह ऐसे होगा कि आप भगवान्‌के हो जायँ फिर भगवान्‌ अपनी चीजको अपने-आप ठीक करेंगे।

तुलसीदासजी महाराजने अपने-आपको भगवान्‌को सौंप दिया। वे एक दिन बैठे थे तो मनमें जरा-सा सांसारिक भाव आया तो बोले—महाराज ! देखो, अब आपकी इज्जत आपके हाथ है।

यह हृदय भवन प्रभु तोरा। यहाँ आय बसे बहु चोरा॥

उन्होंने कहा—भगवन् ! यह शरीर आपका महल है। यहाँ चोर आ बसे हैं। आप लुट जायँगे। मुझे पता नहीं। लुटें कैसे ? जिस हृदयमें भगवान्‌ बैठे हैं, जो हृदय भगवान्‌का हो गया, वह लुटेगा कैसे ?

सर्वमणियोंकी रक्षा करनेके लिये ब्राह्मण रातके समय



इसलिये अपने सारे दैन्यको लेकर, अपनी सारी दीनताको लेकर, अपनी सारी अधमाईको लेकर, अपने सारे पामरपनको लेकर, पापसे भरे जीवनको लेकर, मलसे भरे शरीरको लेकर हम भगवान्से कहें—हे नाथ! हम तुम्हारे हैं। दूसरा हमारा कोई नहीं है। दूसरेकी हमें कोई आशा नहीं है। तुम्हारी ही केवल आशा है। तब भगवान् कहेंगे—तुम्हारा मल हम धो देंगे। तुम मेरी गोदमें आ जाओ। तुम्हें पाप-तापसे मुक्त कर देंगे। तुम मेरे हो।

# कलियुगका परम साधन

( श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज )

नवजलधरवर्ण चम्पकोद्भासिकर्ण  
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम्।  
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं  
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम्॥

सभी शास्त्र कहते हैं कि भगवान्पर विश्वास करो। सभी संत-महात्माओंका मत है कि भगवान्की शरण जाओ, तुम परम सुखी होओगे। तुम्हें अखण्ड आनन्द प्राप्त होगा। अब प्रश्न यह है कि हमारे पास रहनेको बढ़िया कोठी है, चढ़नेको मोटरें हैं, खानेकी भी सभी सामग्रियाँ और अप्सराओंके समान हमारी स्त्रियाँ हैं, लाखों-करोड़ों रुपये हमारे बैंकमें जमा हैं, हम तो सभी प्रकार सुखी हैं, फिर हम भगवान्का भजन क्यों करें? हम क्यों भजन, सन्ध्यावन्दन, नाम-संकीर्तन और शास्त्राध्ययनके चक्करमें फँसें? हमें दुःख क्या है? हमें भगवान्से क्या मतलब?

आप ध्यानसे देखें तो संसारमें सुखी कौन है? संसारी चीजोंसे सब प्रकारसे सुखी कौन हुआ है? अमीर सेव-अंगूरोंको खाकर जितना सुखी होता है, एक किसान बजरीकी रोटियोंमें भी वही स्वाद पाता है। आजसे बीस वर्ष पहले जिन रूखी रोटियोंको खानेमें मुझे जितना स्वाद आता था, आपसे सत्य-सत्य कहता हूँ, उतना स्वाद आज बढ़िया-से-बढ़िया फलोंमें नहीं आता। स्वाद चीजोंमें नहीं, स्वाद तो भूखमें है। जिस अमीरको भूख ही नहीं लगती, उसके लिये भाँति-भाँतिके व्यंजन मिट्टीके समान हैं और जिसे भूख लगती है, उसे भुने हुए चनोंमें बादामोंका स्वाद आता है। कहनेका मतलब यह है कि कुछ भी खाइये यदि आपको भूख है तो खानेकी सभी चीजोंमें आनन्द आयेगा और भूख नहीं तो सभी मिट्टी।

इसी प्रकार सांसारिक सुखोंकी बात है। राजा जितना अपनी रानीके साथ सुख पाता है, एक सूकर अपनी सूकरीके साथ भी उतना ही सुख पाता है। उन

दोनोंके सुखमें कोई अन्तर नहीं।

एक अमीर खूब गुलगुले गद्देपर सोता है, एक गरीब बाहर कंकड़ोंपर। सो जानेपर दोनों ही एक-से हैं। न गरीबको कंकड़ोंकी सुधि रहती है, न अमीरको गुलगुले गद्देकी। यदि अमीरको चिन्ता है तो उसे वह गुलगुला गद्दा शूलकी सेजके समान है। अतः निद्रा भी गरीब-अमीरकी एक-सी है।

आप कहेंगे कि अमीरके पास बहुत-से नौकर हैं, धन है, मकान है, अन्न-जलकी बहुतायत है, वैद्य हैं, दवाएँ हैं, उसे डर नहीं; परंतु हमारे पास तो कुछ नहीं, अतः हमें चोरका, दरिद्रताका, वर्षाका, भूख-प्यासका और बीमारीका डर है। यह बात भी ठीक नहीं। अमीरको भी सदा डर बना रहता है। इतनी बड़ी अँगरेज सरकार, जिसके राज्यमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, वह भी कई राष्ट्रोंको युद्धमें लगे देखकर भयभीत रहती थी। गरीब उतने बीमार नहीं होते जितने अमीर बीमार होते हैं। मेरे पास बड़े-बड़े अफसर आते हैं, बड़े-बड़े नामी वकील, खूब बड़े-बड़े जमींदार, ताल्लुकेदार। उनसे जब मैं कहता हूँ—भाई! तुम ऐसा कठोर काम क्यों करते हो? तब वे कहते हैं—“महाराज! हम दिलसे नहीं चाहते कि ऐसा करें, किंतु क्या करें पेटके लिये सब कुछ करना पड़ता है। इसे न करें, तो खायें क्या?” इससे पता चलता है कि गरीब हो चाहे अमीर हो, लखपती हो, राजा हो, पेटकी चिन्ता सभीको है। इससे सिद्ध यही हुआ कि खाने-पीने, विषय-भोग, निद्रा और आत्मरक्षाकी चिन्ता सबको समान है। अमीर सोना नहीं खाते और गरीब धूल नहीं फाँकते। इन सब बातोंमें सब समान हैं। इन संसारी चीजोंसे किसीको पूर्णरूपसे सन्तोष न हुआ, न कभी होगा। चिन्तासे सभी दुखी होते हैं। बीमारीका, मरनेका दुःख सभीको समान होता है। अतः भगवान्के भजनमें अमीर या कंगालका कोई सवाल नहीं। भगवान्का भजन तो गरीब-से-गरीबको, अमीर-







## साधकोंके प्रति—

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

भगवान् कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

( गीता ७।७ )

—‘हे धनञ्जय! मेरेसे बढ़कर इस जगत्का दूसरा कोई किञ्चिन्मात्र भी कारण नहीं है। जैसे सूतकी मणियाँ सूतके धागेमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही सम्पूर्ण जगत् मेरेमें ही ओतप्रोत है।’

तात्पर्य है कि जैसे सूतकी मणियाँ हैं, सूतका ही धागा है, सब सूत-ही-सूत है, ऐसे ही संसारमें मैं-ही-मैं हूँ अर्थात् मेरे सिवा कुछ नहीं है। अतः भगवान्की दृष्टिसे भी संसार भगवत्स्वरूप है और महात्माओंकी दृष्टिसे भी संसार भगवत्स्वरूप है—‘वासुदेवः सर्वमिति’ (गीता ७।१९)। फिर यह संसार कहाँ है? भगवान् कहते हैं कि जो अपरा प्रकृति है, उससे एक विलक्षण मेरी परा प्रकृति है, जिसको जीव कहते हैं। उस जीवने जगत्को धारण कर रखा है—‘ययेदं धार्यते जगत्’ (गीता ७।५)। अतः जगत्से सम्बन्ध-विच्छेद करनेका दायित्व जीवपर ही है। जीवका धारण किया हुआ जगत् ही इसके दुःखका हेतु है। अब इसको समझानेके लिये एक बात कहता हूँ, आप ध्यान दें।

शास्त्रोंमें आया है कि सृष्टि दो तरहकी है। एक भगवान्की रची हुई सृष्टि है और एक जीवकी रची हुई सृष्टि है। भगवान्की रची हुई सृष्टि कभी किसीको दुःख नहीं देती। उसने कभी दुःख दिया नहीं, कभी दुःख देगी नहीं और कभी दुःख दे सकती भी नहीं। भगवान्की रची हुई सृष्टि अगर जीवको दुःख देगी तो जीव दुःखसे कभी छूट सकेगा ही नहीं। तो फिर दुःख कौन देता है? जीवकी बनायी हुई सृष्टि ही दुःख देती है। जीवकी बनायी हुई सृष्टि क्या है? यह मेरी माँ है, मेरा बाप है, मेरी स्त्री है, मेरा बेटा है, मेरा भाई है, मेरी भौजाई है, ये हमारे पक्षके हैं, ये दूसरोंके पक्षके हैं; ये

हमारी जातिके हैं, ये हमारी जातिके नहीं हैं—यह जो भेद बनाया हुआ है, यह जीवकी रची हुई सृष्टि है। शरीर भगवान्का रचा हुआ है और उसके साथ सम्बन्ध जीवका रचा हुआ है। यह सम्बन्ध जीवकी सृष्टि है, जो दुःख देती है। जीव जिनके साथ अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ता, उनसे दुःख नहीं होता। राग और द्वेष ही जीवके शत्रु हैं—‘तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ’ (गीता ३।३४)। जीव राग और द्वेष कर लेता है, मेरा और तेरा कर लेता है, यही वास्तवमें जीवको दुःख देता है। यह मेरा और तेरा, ठीक और बेठीक, अनुकूल और प्रतिकूल, ये हमारे हैं और ये तुम्हारे हैं—यह दशा जीवने धारण की है और इसीसे इसको दुःख पाना पड़ता है।

ईश्वरके रचित तो स्त्री-पुरुषोंके शरीर हैं। सबके शरीर ईश्वरकी प्रकृतिसे बने हुए हैं। इनके मालिक तो हैं परमात्मा और धातु चीज है प्रकृति। अतः यह सृष्टि न दुःख देनेवाली है और न सुख देनेवाली है। अगर देखा जाय तो यह सृष्टि इसके व्यवहारको सिद्ध करती है, इसकी मदद करती है। दुःख तो वहीं होता है, जहाँ मेरा-तेरा पैदा कर लेते हैं और यह मनुष्यका बनाया हुआ है—‘ययेदं धार्यते जगत्’। जीव जगत्को धारण करता है, इसीसे सुख होता है, दुःख होता है, बन्धन होता है, चौरासी लाख योनियोंकी प्राप्ति होती है—‘कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥’ (गीता १३।२१)। सत्त्व, रज, तम—तीनों गुण तो बेचारे पड़े रहते हैं, कोई बाधा नहीं देते, परंतु इनका संग करनेसे जीव ऊर्ध्वगति, मध्यगति अथवा अधोगतिमें जाता है अर्थात् सत्त्वगुणका संग करनेसे ऊर्ध्वगतिको, रजोगुणका संग करनेसे मध्यगतिको और तमोगुणका संग करनेसे अधोगतिको जाता है। गुणोंका संग यह स्वयं करता है। अपरा प्रकृति किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं करती। सम्बन्ध न प्रकृति करती है, न गुण करते हैं, न इन्द्रियाँ करती हैं, न मन करता है, न बुद्धि करती है। यह स्वयं

सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे जीव मोहित हो जाता है—‘त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।’ (गीता ७।१३) सात्त्विकी, राजसी और तामसी वृत्तियोंसे मोहित होकर जीव उनमें फँस जाता है, परंतु न सात्त्विकी वृत्ति हरदम रहती है, न राजसी वृत्ति हरदम रहती है और न तामसी वृत्ति हरदम रहती है। गुणोंका तो नाशवान् स्वभाव है, उनका नाश होता ही रहता है। आप कितना





## प्रेमका पन्थ निराला है!

( पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट )

जरा-सा भी पत्ता खटकता है कि शबरी चौंक पड़ती है कहीं उसके राम तो नहीं आ रहे हैं! थोड़ी-सी भी आवाज हुई कि वह सोचने लगी शायद उसके प्रियतम भगवान् राम आ रहे हैं! बार-बार कुटियासे बाहर जा-जाकर वह मार्ग देख आती है। उनके मार्गपर उसके पलक-पाँवड़े बिछे हुए हैं। उसे अपने गुरुदेव मतंग ऋषिके इस वाक्यपर पूर्ण विश्वास है कि श्रीराम एक दिन अवश्य ही उसकी कुटियापर अपनी चरण-रज बिखेरने आयेंगे। इसी विश्वासके बलपर तो वह इतने कालसे चुपचाप उनके आगमनकी पावन प्रतीक्षामें अपना समय बिता रही है।

ऐसा भी नहीं है कि वह प्रियतमके आतिथ्यकी ओरसे उदासीन हो। इसका तो उसे बहुत पहलेसे ही ध्यान है। वह प्रतिदिन जंगलसे कन्द-मूल-फल बीन लाती है। उनमेंसे वह प्रत्येकको भलीभाँति देखती है। जो उसे अच्छा प्रतीत होता है, उसे अपने प्यारे रामके लिये रख छोड़ती है और जो खराब होता है, उसे स्वयं खा डालती है।

अचानक एक दिन उसे समाचार मिलता है कि उसके आराध्यदेव आ रहे हैं! प्रियतम ज्ञानशिरोमणि ऋषियोंसे पूछते हैं—‘महाराज! इधर कहीं शबरी भीलनीकी झोंपड़ी है?’ आश्चर्यसे चकित ऋषिगण उन्हें भीलनीकी कुटियाका मार्ग दिखाते आ रहे हैं! उनकी समझमें ही नहीं आ रहा है कि आखिर इसका कारण क्या है? उनकी कुटियोंमें न पधारकर भगवान् उस भीलनीकी कुटियाकी ओर क्यों जा रहे हैं? पर—समझमें आनेलायक बात भी तो हो! वे बेचारे क्या जानें कि प्रेमके आगे ज्ञान पानी भरता है। भक्तिके आगे विद्वत्ता हाथ बाँधे खड़ी रह जाती है। सच्ची लगनके सम्मुख सारा पाण्डित्य सींकेपर टँगा रह जाता है! जहाँ सर्वात्मसमर्पण होता है, अनन्य शरणागति होती है, प्रियतमके चरणोंपर सब कुछ

दे डाला जाता है। वहाँ ज्ञान, कर्म, उपासना, व्रत, नियम, उपवास—सभी एक किनारे खड़े रह जाते हैं! वहाँ तो वह मतवाला प्रेमी प्रेमास्पदपर एकछत्र साम्राज्य जमा बैठता है। सब कुछ देकर सब कुछ खरीद लेता है। प्रेमकी झीनी-सी जंजीरमें प्रेमस्वरूप सच्चिदानन्दको ही बाँध लेता है। अहा, कितना अनोखा है यह प्रेम-बाजारका अलवेला सौदा!

शबरीकी ओर प्रभुका यह प्रेम देखकर ऋषिगण अपनी निस्सार साधनाको धिक्कारने लगते हैं। प्रभु-प्रेमकी दीवानी शबरीकी आजतक उन्होंने न जाने कितनी अधिक उपेक्षा और अवहेलना की है, अपार घृणा की है, उसकी छायातकको अपने पास नहीं फटकने दिया है और आज—आज वही शबरी उन सबसे बाजी मार ले गयी है। भगवान् आज उसीकी कुटियामें अपनी चरणरज बिखेरने जा रहे हैं। धन्य है, धन्य है—इस अशिक्षित मूर्ख भीलनीका प्रेम—जिसके वशीभूत हो आज वे परम दयालु श्रीभगवान् उसकी ओर बरबस खिंचे चले जा रहे हैं! आज उनका सारा गर्व, सारा अहंकार—चूर-चूर होकर भीलनी शबरीके चरणोंपर बिखर जानेको व्याकुल हो रहा है।

इधर शबरीका और ही विचित्र हाल है। प्रियतमके आगमनके समाचारने उसकी अजीब ही अवस्था बना दी है। वे आ रहे हैं—भला, इससे भी बढ़कर किसी प्रेमीको और कोई मंगल-संवाद हो सकता है? जिनकी प्रतीक्षा करते-करते उसकी आँखें पथरा गयीं, दिन-रात, मास-वर्ष—सभी एक-एक कर व्यतीत होते गये—पर वे आजतक नहीं आये, वे ही—परम प्रेमास्पद आज आ रहे हैं—यह आनन्द भला, कोई हृदयमें समानेलायक बात है? इस प्रेमानन्दको रखनेके लिये उसे कोई ठौर ही ढूँढ़े नहीं मिलता! कितना सुहावना है आजका दिन—जब उसकी वर्षाकी नही-नही, जन्म-जन्मान्तरीकी साधना



सफल होने जा रही है!

आजहीके दिनके लिये तो वह इतनी लम्बी प्रतीक्षा करती आ रही है। अहा, कितनी कठिन है यह अनवरत साधना! दिन-पर-दिन बीतते चले जाते हैं, मासों-पर-मास निकलते चले जाते हैं, सालोंपर सालें गुजरती चली जाती हैं—पर, यहाँ हताश होनेका काम नहीं। सतत जागरूक रहना पड़ता है। पल-पलपर प्यारेकी यादमें मशगूल रहना पड़ता है। हर घड़ी उनके मार्गपर आँखें बिछाये चुपचाप बैठा रहना पड़ता है। क्या पता, प्रियतम कब आ जायँ? वे तो सुबह और शाम, दोपहर और आधी रात, वर्षा और तूफान, आँधी और पानी, गर्मी और सर्दी—कुछ देखते नहीं, जब जी चाहता है तभी पहुँच जाते हैं। प्रेमी उनके स्वागतके लिये प्रस्तुत न रहे, वे आकर द्वारसे वापस लौट जायँ तो इससे बढ़कर प्रेमीके लिये और दुःखकी बात हो ही क्या सकती है?

शायद तुम कहो कि यह प्रतीक्षा तो बड़ी बुरी चीज है तो भैया, साधना और सो भी प्रेम-साधना—कोई सरल बात नहीं है! सभीका मन उसमें नहीं लग सकता। तभी तो सभी लोग प्रभुके प्यारे नहीं बन पाते? सच्चे प्रेमियोंको छोड़कर और सबको तो इस मार्गमें नीरसताका ही बोध होता है। सभी वेदान्तको, योग और उपासनाको शुष्क विषय कहा करते हैं, किसलिये? इसी अनवरत साधनाहीके कारण तो! यह प्रतीक्षा, यह इन्तजारी ही तो लोगोंको खलती है और इसीसे अनेक इस मार्गपर आकर इसे छोड़ बैठते हैं, पर भैया, प्रेमीको इस प्रतीक्षामें ही आनन्द मिलता है, तभी तो वह हँस-हँसकर कहा करता है कि—

‘वस्त्रमें हिज्रका गम, हिज्रमें मिलनेकी खुशी,  
कौन कहता है जुदाईसे विसाल अच्छा है।’  
वे तो इसे प्रेम-मिलनसे भी उत्तम वस्तु समझते हैं। भला, कुछ ठिकाना है ऐसे मस्तोंकी अलबेली मस्तीका! हाँ, तो शबरीके हर्षका आज पार नहीं है। वह कभी कुटियाके बाहर जाती है, कभी भीतर! कभी

हाथकी मालामें सुमन गूँथने बैठ जाती है, कभी द्वारकी ओर ताकने लगती है। कभी झाड़ू उठाकर द्वारके आस-पासका सारा मार्ग बुहार आती है—कि कहीं कोई कंकड़ी उसके प्रियतमके पावन पदारविन्दोंमें चुभ न जाय। कभी चुपचाप बैठकर सोचने लगती है कि वे परम प्रेमास्पद जब आयेंगे तो मैं किस प्रकारसे उनका स्वागत करूँगी। किस भाँति उनकी अभ्यर्थना करूँगी। किन शब्दोंमें उनसे वार्तालाप करूँगी!—पर इन सब व्यापारोंमेंसे किसीमें भी उसका मन नहीं लगता। चित्तकी बड़ी ही विचित्र अवस्था है। कुछ समझमें ही नहीं आता कि वह क्या करे? नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंका प्रवाह अविरल स्रोतकी भाँति बहता जा रहा है और वह उसीमें डूब-उतरा रही है। सारा होश-हवास गायब है। प्रियतम कितनी देरसे उसकी कुटियामें खड़े उसकी ओर देखते हुए मुसकराते खड़े हैं और वह उनकी ओर हक्की-बक्की-सी देखती हुई चुपचाप खड़ी है। अहा, यही तो है वह अनुपम मंजुल मूर्ति, जिसका वर्णन उसके गुरुदेवने उससे किया था! इसी मूर्तिको तो वह इतने अधिक दिनोंसे हृदयमें धारण किये हुए थी। इसीके दर्शनोंकी प्रतीक्षामें तो वह अभीतक अपने प्राणोंको शरीरके घेरेमें बन्द किये हुए थी! बंगभाषाके एक कविने ठीक ही तो कहा है कि—

साधनाये सिद्धि लाभ एके दिने नाँहि हय,  
श्रमेर साफल्य आछे ए जगते सुनिश्चय,  
सुदिन होलो आगत पूर्ण हके मनोरथ,  
सद्यः जात तरु शाखा फुटे न कुसुम भार,  
समये दिवेन विभु श्रम योग्य पुरस्कार,  
परिश्रमका पुरस्कार तो मिलेगा ही, भले ही आज न मिले, दस दिन बाद मिले! साधनामें यदि साधकको शीघ्र ही सफलता नहीं मिलती तो हताश न होना चाहिये। उसे छोड़ बैठनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो सतत प्रयत्नमें लगे रहना पड़ता है। ‘राम’ के शब्दोंमें यहाँ तो—



पथका पथिक न बनाओगे क्या ?



**पुण्यप्रदर्शनका फल : बालि-प्रसंग**

( पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय )

समाजमें अनेक लोग ऐसे होते हैं, जो दान, पुण्य आदि तो बहुत करते हैं; किंतु अपने यश एवं प्रशंसाहेतु पुण्यका प्रदर्शन उससे भी कहीं अधिक करते हैं। कुछ लोग लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक या ईश्वरको किसने देखा है—ऐसे सर्वथा नास्तिकतापूर्ण विचार अपनेमें रखकर केवल मान-प्रतिष्ठा, भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये पाखण्डपूर्वक दान-पुण्य, गरीबोंकी सेवा, साधु-ब्राह्मण-सेवा आदि करते हैं। यह भी एकमात्र अपराध कमाना है। यदि ये दान-पुण्यके कार्य निःस्वार्थ, केवल सेवाभावसे किये होते तो इनका फल उनकी कल्पनासे भी कहीं अधिक मिलता, किंतु दुर्भाग्यवश उन्हें असली हीरे-मोतीके स्थानपर केवल काँचके टुकड़े—वृत्ति ही प्राप्त होती है (अर्थात् केवल प्रशंसा)।

इस प्रकारकी वृत्तिके मूलमें उनका अभिमान ही बढ़ता है। अभिमानी व्यक्ति बड़ा प्रदर्शन-प्रिय होता है।

ऐसा व्यक्ति अच्छा कार्य भी करता है तो उसके पीछे उसका उद्देश्य केवल प्रदर्शन करना ही होता है। मानसमें तुलसीदासजीने एक ऐसे ही पात्रका वर्णन किया है। वह है बालि। बालि पुण्यकी इसी प्रदर्शनवृत्तिसे ग्रस्त है।

वर्णन आता है कि सुग्रीव बालिके डरसे ऋष्यमूक पर्वतपर हनुमान्जीके साथ रहते हैं। बालि शापके कारण इस पर्वतपर नहीं आ सकता। बालि यद्यपि अत्यन्त बलशाली है, पर उसकी वृत्ति ऐसी है कि उसकी यह विशेषता उसके लिये अभिशाप बन जाती है। बालिको मुनियोंने जो शाप दिया है, उसके पीछे जो कारण है वह बड़ा सांकेतिक है।

कथा आती है कि एक दुन्दुभि नामका राक्षस था। उसने बहुत आतंक मचाया हुआ था। पापकर्मोंमें लीन रहता था। साधु-सन्तोंके आश्रमोंको, उनके यज्ञोंको अपवित्र कर देता था। एक दिन वह आधी रातको बालिक महलके सामने आया एवं उसने उसे बुझके

लिये ललकारा। उसने सोचा कि बालि सोया होगा तथा युद्धहेतु बाहर नहीं आयेगा और प्रातः वह घोषित कर देगा कि उसने बालिपर विजय प्राप्त कर ली है, किंतु उसका गणित उलटा हो गया। बालिने उससे युद्ध किया। बालिने जब उसपर वार किया तो वह मर ही गया। बालिने सोचा कि इस राक्षसको मारनेका यश तो मुझे मिलना ही चाहिये, पर वह तो मर ही गया, तब यश मिले कैसे? उसने राक्षसके शवको उठाकर ऋष्यमूक पर्वतपर फेंक दिया जिसपर ऋषि-मुनि साधना-तपस्या किया करते थे। शवके रक्त-मज्जा एवं हड्डियोंके अंश उन आश्रमोंमें बिखर गये, जिससे वे सब आश्रम अपवित्र हो गये। उसका उद्देश्य था कि लोग जानें तो सही कि उसका वध बालिने किया है। यह दम्भ और दिखानेकी वृत्ति बालिके जीवनसे कभी गयी नहीं। मनोभाव यह है कि मैंने मार तो दिया, पर यदि किसीने देखा नहीं तो मारनेका क्या लाभ! लोग देखें तो सही कि हमने क्या किया है। यही दिखावेकी वृत्ति है, जो बालिको कभी छोड़ती नहीं। ऋषिगण बिगड़कर कह उठे—जिस मूर्खने इस दैत्यको मारा है, उसे वरदान नहीं शाप मिलेगा! यह बालिके जीवनकी कैसी विडम्बना है! कहाँ तो उसे राक्षसको मारनेके कारण वरदान मिलना था और कहाँ दम्भमें फँसकर वह शापका भागी बनता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब हमारा पुण्य प्रदर्शनके लिये होता है एवं केवल लोकसम्मान पानेकी दृष्टिसे हम पापको पराजित करते हैं, तो फल यह होता है कि हमारे जीवनके सदगण भक्तिकी प्राप्तिमें सहायक नहीं बनते।

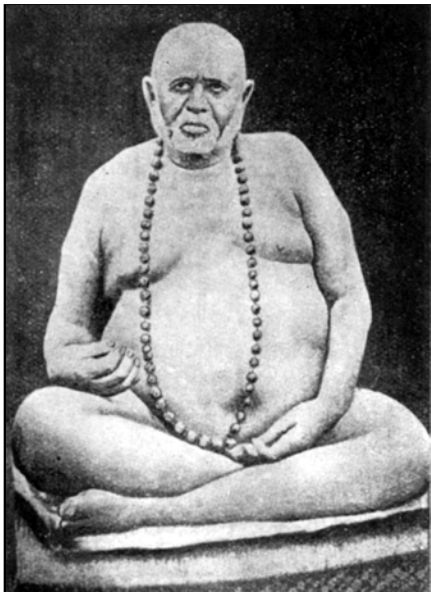
बालि यदि अभिमानप्रेरित प्रदर्शनके स्थानपर सचमुच मुनियोंकी सेवाकी दृष्टिसे दुदुम्भिका वध करता, तो शापके स्थानपर मुनियोंसे आशीर्वाद प्राप्त करता और अपने पराक्रमको सार्थककर धन्य हो जाता।

MADE WITH LOVE BY Avinash/Shalini

[ प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता ]

## चित्त-शुद्धि

( तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजी महाराज )



धर्मका सार चित्त-शुद्धि है। जो धर्मके अनुरागी अथवा सनातन-धर्मके यथार्थ मर्मका अन्वेषण करनेके इच्छुक हैं, उन्हें इस तत्त्वके प्रति विशेष ध्यान रखना चाहिये। जिसकी चित्त-शुद्धि नहीं, उसका कोई धर्म नहीं। चित्त-शुद्धि केवल सनातन-धर्मका ही सार है, सो बात नहीं है। यह सभी धर्मोंका तत्त्व है। जिसका चित्त शुद्ध है, वही श्रेष्ठ हिन्दू, श्रेष्ठ मुसलमान, श्रेष्ठ ईसाई आदि है। जिसकी चित्त-शुद्धि नहीं, वह किसी भी धर्मके अनुयायियोंमें धार्मिक कहा जाकर गण्य नहीं हो सकता। चित्त-शुद्धि ही धर्मका मर्म है। यह अखण्ड दार्शनिक सिद्धान्त है।

चित्त-शुद्धि क्या है—चित्त-शुद्धिका पहला लक्षण इन्द्रियोंका संयम है। इन्द्रिय-संयम—इस वाक्यद्वारा यह नहीं समझना चाहिये कि सब इन्द्रियोंका एक बार ही उच्छेद अथवा ध्वंस करना होगा। इन्द्रियोंको संयत करनेका अभिप्राय इन्द्रियोंको अपने वशमें करना है, स्वयं उनके वशमें होना नहीं। इसीका नाम इन्द्रिय-संयम है। भोजन-लोलुपता एक प्रकारसे इन्द्रिय-प्रवृत्ति है, किंतु इन्द्रियोंको संयत करनेमें यह नहीं समझना चाहिये

कि भोजनका त्याग कर दिया जाय; केवल वायु-भक्षण किया जाय अथवा गला-सड़ा दूषित आहार करके दिन व्यतीत कर दिया जाय।

शरीर एवं स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जिस परिमाणमें और जिस प्रकारके आहारकी आवश्यकता है, वही करना चाहिये। इससे इन्द्रिय-संयममें कोई बाधा नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त उत्तम आहारादि अविधेय नहीं है; यदि उसमें स्पृहा—इच्छा न रहे। मोटी बात यह है कि इन्द्रियोंकी आसक्तिका अभाव ही इन्द्रिय-संयम है, जो बहुत कुछ आहारादिपर निर्भर है।

आत्मरक्षार्थ अथवा धर्मरक्षार्थ अर्थात् ईश्वरीय नियम-रक्षार्थ जितनी इन्द्रियोंकी चरितार्थता आवश्यक है, उसके अतिरिक्त जो इन्द्रिय-परितृप्तिकी अभिलाषा करता है, इन्द्रिय-संयम उसके वशकी बात नहीं। जो इन्द्रिय-परितृप्तिमें सुखानुभव नहीं करता, आकांक्षा नहीं रखता, केवल धर्मरक्षाकी भावना रखता है, वह संयतेन्द्रिय है, यह समझना चाहिये।

ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जो इन्द्रिय-परितृप्तिसे विमुख रहनेपर भी अपने मनको शुद्ध नहीं कर पाते। वे लोकलज्जासे अथवा लोगोंमें प्रसिद्धिके लिये किंवा ऐहिक उन्नतिके लिये अथवा धर्मके भानसे पीड़ित होकर जितेन्द्रियकी तरह कार्य करते हैं, किंतु उनके भीतर इन्द्रियोंकी ज्वाला धधकती रहती है, जन्मसे मृत्युपर्यन्त वे स्खलितपर्द न होकर भी (अपानवायुको रोक रखनेपर भी) इन्द्रिय-संयमसे बहुत कुछ दूर ही रहते हैं। जो बार-बार इन्द्रिय-तृप्तिके लिये उद्योगी एवं कृतकार्य हैं, उनसे ऐसे धर्मात्माओंका भेद बहुत ही थोड़ा है। दोनोंको ही समानरूपसे नरककी अग्निमें दग्ध होना पड़ता है। इन्द्रिय-परितृप्ति करो अथवा न करो, जब भ्रमसे भी इन्द्रिय-परितृप्तिकी बात मनमें न आये, आत्मरक्षार्थ अथवा धर्मरक्षार्थ इन्द्रियोंको चरितार्थ करना



पड़े तो भी उसको दुःखके अतिरिक्त सुखका विषय न माना जाय। उसी स्थितिमें यह समझा जायगा कि इन्द्रिय-संयम हुआ है। इसके अभावमें योगाभ्यास, तपस्या, उपासना आदि कठोर कार्य सभी वृथा हैं।

केवल योग अथवा तपस्या करनेसे इन्द्रिय-संयमरूप कार्य पूरा नहीं होता। कार्यक्षेत्रमें—संसार-धर्ममें ही इन्द्रिय-संयम हो सकता है। प्रतिदिन उनका निवास स्वीकार करनेवाला इन्द्रिय-परितृप्तिके उपादानोंसे दूर जाकर—सब विषयोंसे निर्लिप्त हो अपने मनमें यह भले ही समझ ले कि मैं इन्द्रियोंको जीतनेवाला हो गया हूँ, किंतु जैसे मिट्टीका पात्र अग्निमें पका नहीं तो वह छूते ही टूट जाता है, वैसे ही इस प्रकारका इन्द्रिय-संयम भी लोभके स्पर्शमात्रसे ही ठहर नहीं सकता। इसके प्रमाण बहुत हैं। स्वर्गसे एक अप्सरा आयी और उसी क्षण ऋषिराजका योग भंग हो गया, अधिक धैर्य धारण करनेमें असमर्थ होकर अन्तमें वे इन्द्रिय-परितृप्ति करके ही शान्त हुए।

जिस देशमें जो वस्तु नहीं मिलती, उस देशके लोग तो उस वस्तुको खाते नहीं अथवा उसे व्यवहारमें नहीं लाते, परंतु यदि वही वस्तु कभी मिल जाय और उसे बड़े आग्रहके साथ खायें एवं व्यवहारमें लायें तो इसको उस वस्तुका त्याग नहीं कहा जा सकता। जो प्रतिदिन इन्द्रिय-चरितार्थ करनेके उपयोगी उपादानोंके संसर्गमें आये हैं। उनसे युद्धकर कभी जयी और कभी विजित हुए हैं। वे ही शेषमें इन्द्रिय-जय करनेमें सफल हुए हैं। पराशर अथवा विश्वामित्र ऋषि इन्द्रिय-जय नहीं कर सके। इन्द्रिय-जय करनेमें समर्थ हुए थे—चिरस्मरणीय भीष्म और श्रीराम-भ्राता लक्ष्मण।

इन्द्रिय-संयम अपेक्षाकृत तुच्छ बात है। उसकी अपेक्षा चित्त-शुद्धिका बड़ा महत्त्व है। बहुतोंकी इन्द्रियाँ संयत हैं, किंतु दूसरे कारणसे उनका चित्त शुद्ध नहीं हुआ है। 'इन्द्रिय-सुख-भोग नहीं करूँगा। किंतु मैं अच्छा रहूँ, मुझे सब प्यार करें'—इस प्रकारकी वासना उनके मनमें बड़ी प्रबल है। मेरे पास धन हो, मेरा मान

हो, मेरा यश बढ़े, मैं बड़ा बनूँ, मेरा सौभाग्य हो, मुझे सब धार्मिक और महात्मा मानकर आदर करें—वे सर्वदा ही यह कामना करते हैं। जिससे यह वासना पूरी हो, चिरकाल इसी चेष्टामें—इसी उद्योगमें व्यस्त रहते हैं। इसके लिये वे न करें ऐसा कार्य नहीं, और इससे भिन्न ऐसा विषय नहीं जिसमें मन न लगाते हों। जो इन्द्रियासक्त लोग हैं, उनकी अपेक्षा भी ये निकृष्ट हैं। इनके लिये धर्म कुछ नहीं, कर्म कुछ नहीं, ज्ञान कुछ नहीं और भक्ति कुछ नहीं। ईश्वरको माननेपर भी ईश्वर है या नहीं, इसका उन्हें आत्मविश्वास नहीं। इन्द्रिय-आसक्तिकी अपेक्षा यह स्वार्थपरता चित्त-शुद्धिमें बड़ी बाधक होती है। परार्थपरताके ग्रहण और वासनाके त्यागके बिना चित्त-शुद्धि नहीं होती। जब अपने लिये सुखान्वेषण करोगे, उसी प्रकार दूसरेके लिये भी सुख ढूँढ़ोगे,\* जब अपने-आपसे दूसरेको भिन्न न समझोगे, जब अपनोंकी अपेक्षा दूसरोंको अपना मानोगे, जब क्रमशः अपने-आपको भूलकर दूसरेको सर्वस्व समझोगे, जब दूसरेमें अपने आत्माको निमज्जित रख सकोगे, जब तुम अपने आत्माको विश्वव्यापी विश्वमय अनुभव करोगे, तभी यह समझना चाहिये कि चित्त-शुद्धि हुई है। यह बिना हुए कौपीन धारणकर संसार-परित्यागपूर्वक भिक्षा-वृत्तिके अवलम्बनद्वारा घर-घरमें अलख-जगनिया 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने या हरिनामकी ध्वनि करते हुए घूमनेसे चित्तकी शुद्धि नहीं होगी।

पक्षान्तरमें राज-सिंहासनपर बहुमूल्य रत्न धारणकर बैठनेवाला जो राजा एक भिक्षुक प्रजाजनके दुःखको अपने दुःखकी तरह समझेगा, निःसन्देह उसकी चित्त-शुद्धि हुई है। जो सब शुद्धियोंका स्रष्टा है, जो शुद्धिमय है, जिसकी कृपापर शुद्धि अवलम्बित है, उसमें प्रगाढ़ भक्ति होना चित्त-शुद्धिका प्रधान लक्षण है।

भक्ति ही चित्त-शुद्धिका और धर्मका मूल है। चित्त-शुद्धिका पहला लक्षण हृदयमें शान्ति, दूसरा लक्षण दूसरेको प्यार करना और तीसरा लक्षण ईश्वरमें





( मास्टर श्रीपारसचन्दजी )

सप्रु—हाँ!

**मनोहर**—तबतक बेगम साहेबाने खुद ही कहा बेंत मैं ही लगाऊँगी। खूँटीपरसे चमड़ेका बेंत कर बेगम साहेबाने चार-पाँच हाथ करारे जमा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

दिये। बेचारी दासी रोती हुई गिर पड़ी। उसके बाद बेगम साहेबा थक गयीं। औरतकी जात मूलायम होती ही है!

सप्र—हँ!

**मनोहर**—बादशाह एक-दो-तीन-चार-पाँच कहकर गिनती गिनने लगे। तीस बेंततक दासी जार-जार रोती रही। परंतु, इसके बाद दासीकी मति पलट गयी। तीससे साठतक दासी खूब हँसती रही।

सप्र—सो क्यों ?

**मनोहर**—धीरज रखिये। सब बातें आप-ही-आप  
खुलती जायँगी।

सप्रू—अच्छा, हाँ!

**मनोहर**—सजा समाप्त होनेपर बादशाहने दासीसे पूछा कि तू पहले रोयी क्यों और पीछे हँसी क्यों? दासीने कहा कि चोटके कारण रोयी थी। परंतु, जब यह समझमें आया कि मैंने एक घण्टा पलंगपर बिताया तब तो साठ बेंत लगे और बादशाह सलामत रातभर सोते हैं सो इनकी न मालूम क्या दशा होगी! पलंगकी सजासे बेगम साहेबा भी न बचेंगी। आप दोनोंपर अनगिनती बेंत पड़ेंगे। अतः यह सोचकर मैं हँसी कि सजा देनेवालोंको अपनी सजाकी खबर ही नहीं है। जिस तरहसे पलंगपर मुझे सोता देख आप क्रोधित हुए, उसी तरह आपको पलंगपर सोता देख, खुदा कुपित होता है। मेरे हँसनेका यही कारण है। इतना सुनते ही बादशाहकी बुद्धि बदल गयी। बादशाहने ताज फेंक दिया, इमामा फेंक दिया, जामा फेंक दिया और जूते फेंककर फकीरी कफनी पहन ली। रामचन्द्रजी दिनको वनकी ओर चले थे, बादशाह ठीक आधी रातको वनगामी हो गया।

सप्रू—वाह ! वाह ! The duty is the beauty.

**मनोहर—**अंग्रेजीमें क्या मुझे गाली देने लगे?

**सप्रू**—नहीं, मनोहर! तुमने बहुत अच्छा किस्सा कहा। लेकिन अब हमको भी इस पलंगसे उतरना चाहिये।

Duty is beauty इतना कहकर वह पलंगपरसे उतर पड़े और पृथ्वीपर कम्बल बिछाकर लेट गये।

शहरभरमें खबर फैल गयी कि फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट मिस्टर सप्रू ५५०/- मासिकपर लात मारकर फक्कीर हो गये! बंगलेके द्वारपर एक इमलीके नीचे, एक कम्बलपर, डिप्टी कलेक्टर, फक्कीरी भेषमें बैठे हैं।

बात-की-बातमें कलेक्टर साहब, सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस, जिलेके शेष तीन डिप्टी कलेक्टर और कोतवाल साहब घटनास्थलपर जा पहुँचे।

**कलेक्टर**—वेल मिस्टर सप्रू! तुमको क्या हो गया? तुम कलेक्टरीके वास्ते नामजद हो गया है। तुमने यह इसटीपा क्यों भेजा? अम तुमारा इसटीपा मंजूर करने नहीं माँगटा!

**सप्रू**—अभीतक सरकारकी नौकरी की, अब मालिककी नौकरी करूँगा।

**कलेक्टर**—पिकीरी करेगा पिकीरी ? चौबीस घण्टेमें पाँच घण्टा सरकारी काम करो और बाकी वक्तमें पिकीरी करो । टम बी राम राम करना—अम बी राम राम करेगा ।

**सपू**—सज़ा देनेवाले नहीं जानते हैं कि उनके लिये किस सज़ाकी तजबीज हो रही है। इस बातने मेरा कलेजा काट दिया।

तहसील भरथनाके डिप्टी कलेक्टरने कलेक्टरसे कहा—‘हज़ूर ! ‘ज्ञानकी बात कृपानकी धारा’—यानी तलवारकी तरह बात भी काट करती है। मेरा मँझला भाई जिला बाँदामें तहसीलदार था। एक रोज उसने देखा कि एक काले साँपने एक मेंढक पकड़ा और निगल गया। भाईने सोचा कि इसी तरह एक दिन मौतका साँप, मुझ मेंढकको गटक जायगा। उसी वक्त वह साधू हो गया। आजतक पता नहीं कि कहाँ है।’

**कलेक्टर**—मिस्टर सप्रू! अगर मेरी बातपर तुम नजर नहीं डालता तो न सही। वह देखो, तुमारी खूबसूरत और तालीमयाप्ता बीबी, फाटकपर हाथ रखे रो रही है। तुमारा छोटा-सा बच्चा भी रो रहा है। तुमारे बिना तुमारे मेम साहबका क्या हाल होगा? तुमारा बच्चा कैसे तालीम पायेगा? बच्चेको पढ़ा-लिखा दो, तब पिकीर होना। तब हम बी पिकीर होगा।

सप्रू—नहीं हज़ूर! भूखी-प्यासी, थकी-माँदी

× × ×

पबलिकका पैसा, वेतनके रूपमें लेकर मैंने जो पलंग-बाज़ी की है, उसकी सजा मुझे जरूर मिलेगी। अब मैं किसी दूसरेका इंसाफ नहीं करूँगा—खुद अपना इंसाफ करूँगा। जो अपना इंसाफ नहीं करता, वह दूसरोंका क्या इंसाफ करेगा ?

सबने समझाया—पर सब व्यर्थ। लाचार होकर कलेक्टर साहबने इस्तीफा ले लिया। मनोहर नाई छाती पीट-पीटकर श्रीमती सप्रूके चरणोंमें लोट रहा था और कह रहा था कि ‘मैंने नहीं जाना था कि कहानीमें भी असर होता है, नहीं तो यह कहानी नहीं कहता!’

शहर इटावासे एक मील दक्षिणमें यमुनाजी हैं। एक पक्के घाटपर भूतपूर्व डिप्टी कलेक्टर श्रीयुत सप्रूजी बैठे हैं। फटी कमली है और एक मोटा सोटा है। यमुनामें खड़े होकर आप घाटपर सोटा खटखटाया करते थे और कभी-कभी कहते थे—

‘लगा रहा खटका!’

‘खटकेका खटका—खट पट करता रह!!’

‘मत मिटना—खटखटा!!!’

दस बजेके करीब झोली लेकर आप भिक्षा लेने शहरमें जाते थे। पबलिक उनको पहचानती तो थी ही। सभी चाहते थे कि आज हमारे द्वारपर आयें। रोटी लेते थे—रोटियोंको लेकर उस झोलीको यमुनाजीमें डुबाते थे। तदनन्तर उस झोलीको एक इमलीकी शाखमें लटका देते थे। चार बजेतक झोली लटकती रहती थी। फिर

कुछ आप खाते और बाकी बन्दरोंको खिला देते थे। फटी कमलीके सिवा कोई वस्त्र पास नहीं रखते थे। इस प्रकार इटावाके एक डिप्टी कलेक्टरने इटावामें ही बारह साल घोर तपस्या की।

‘खट-खट’ करते रहनेसे पबलिक उनको ‘खटखटा बाबा’ कहने लगी। एक बार खटखटा बाबाने भण्डारा किया। घीकी कमी पड़ गयी। कड़ाही चढ़ी हुई थी—शहर दूर था। आपने एक चेलासे कहा कि दो कलसा यमुना-जल लाकर कड़ाहीमें छोड़ दो। वैसा ही किया गया। यमुनाका जल घी बन गया। पूड़ी सेंकी गयी।

एक बार कोई सिद्ध यमुनाजीकी बीच धारामें पद्मासन लगाये बैठा हुआ चला जा रहा था। खटखटा बाबाको देखकर कहा कि ‘पानी पिला जाओ।’ बाबाजी भी लोटामें जल लेकर, यमुनामें स्थलकी भाँति चलने लगे। पानी पीकर महात्माने कहा—‘तुम भी सिद्ध हो गये!’

खटखटा बाबाकी समाधिपर अब अनेक इमारतें बन गयी हैं। समाधिका मन्दिर और विद्यापीठकी इमारत दर्शनीय हैं। सहस्रों प्राचीन पुस्तकोंका अपूर्व संग्रह किया गया है। सालमें एक बार मेला लगता है। भारतके विद्वानों, योगियों और पण्डितोंको निमन्त्रण देकर बुलाया जाता है। खूब व्याख्यान होते हैं। खटखटा बाबाकी समाधि इटावाका तीर्थस्थान है। इटावा जिलेका बच्चा-बच्चा खटखटा बाबाके नामसे परिचित है।

# विश्वका कल्याण हो

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।  
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

(श्रीमद्भा० ५।१८।९)

[ हे नाथ! ] विश्वका कल्याण हो, दुष्टोंकी बुद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियोंमें परस्पर सद्भावना हो, सभी एक-दूसरेका हित-चिन्तन करें, हमारा मन शुभ-मार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि (निरन्तर) निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें संलग्न (लगी) रहे।

संत-चरित—

श्रीसिद्धारूढ स्वामी

( ह० भ० प० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्रजी पांगारकर )



श्रीसिद्धारूढ स्वामीका पहला नाम सिद्धाप्पा था। निजामराज्यके विद्रीकोट नामक गाँवमें संवत् १८९३ ई० में चैत्र शुक्ल नवमीको किसी श्रीमान् कुलमें इनका जन्म हुआ। इनके घर नित्य श्रीमद्भागवत और वेदान्तके प्रवचन हुआ करते थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और बचपनसे ही वैराग्यके लक्षण इनमें दृष्टिगोचर होते थे। ये प्रवचन सुनते थे और फिर एकान्तमें जा बैठते थे, अन्य बालकोंकी तरह खेल-कूदमें इनका मन नहीं लगता था। भोजनके समय इन्हें ढूँढ़कर लाना पड़ता था। इस प्रकार चौदह वर्ष ये अपने घर माता-पिताके पास रहे फिर एक दिन घरसे जो निकले सो फिर कभी घर लौटे ही नहीं। एक लँगोटी ही पहने, कन्धेपर एक चीथड़ा डाले, अगृही होकर जंगलोंमें विचरने लगे। भूख लगनेपर किसी गाँवमें चले जाते और करतल भिक्षा पा लेते थे। रातको किसी मन्दिर या मसजिदमें या वृक्षके नीचे पड़े रहते। इस तरह विचरते हुए औँदिया नागनाथ पहुँचे। वहाँ इन्हें एक सिद्ध पुरुषका सत्संगलाभ हुआ, जिससे ये कृतार्थ हुए। एक तो तप्त भूमि, दूसरे उसमें बीज भी बोया हुआ था ही, अमृतादिकका सिंचन होता

ही अंकुर निकल आये। यहाँसे फिर सिद्धाप्पा लौटे और घूमते-घामते बीजापुर पहुँचे। यहाँ भी उनकी चर्या जडाश्वबधिरवत् ही रही। दिनमें करतल-भिक्षा करते, रातको किलेके श्रीनृसिंहदेवालयमें जाकर सो रहते। एक दिन रातके समय ये अपने शयनके स्थानको जा रहे थे। रास्तेमें किसी साहूकारकी बारात जा रही थी। बारातका एक मजूर अपना बोझ नीचे रखकर निकल भागा था। लोगोंने वह बोझ उठानेके लिये बेगारमें इन्हें पकड़ा। इन्होंने बोझ उठा लिया, बारातको ठिकाने पहुँचा दिया और बोझा उतारकर चल दिये। साहूकार उन्हें कुछ मजूरी या इनाम दिया चाहते थे, पर इनका पता नहीं चला।

इस चर्याके साथ कुछ वर्ष बीजापुरमें रहकर पीछे ये गोकर्ण पहुँचे। रास्तेमें दो-दो दिन बिना कुछ खाये रह जाते, चाहे धूप हो या ठण्ड कहीं भी पड़े रहते, कभी-कभी केवल दूध ही पी लेते और कभी केवल जलसे ही निर्वाह करते। कभी किसीसे अधिक बोलते नहीं थे। सदा स्वरूपानन्दमें निमग्न रहते और जो कुछ दृष्टिके सामने आता उसे देखते, कुछ भी खाकर पेटकी ज्वालाको शान्त करते, जो फटा-पुराना कपड़ा मिल जाता, उसीसे बदनको ढक लेते। गोकर्णमें कुछ दुष्टोंने इनके सर्वांगमें अमंगल पदार्थका लेप करके इन्हें गधेपर बैठाकर इनका जुलूस निकाला। पर इन्होंने चूँ नहीं की, न इन लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध कोई जरा-सी भी हरकत ही की। इस सहिष्णुताकी बलिहारी है!

गोकर्णसे ये घूमते-घामते हुबली आये। हुबलीकी पुरानी बस्तीसे डेढ़ मीलपर आमकी एक बगिया है, उसमें एक छोटी-सी तलैया है। चरवाहोंके लड़के यहाँ खेला करते थे। इन लड़कोंके साथ ये भी खेलने लगते थे। यहीं किसी सिद्ध पुरुषकी एक कोठरीनुमा समाधि है। सिद्धाप्पा रातको इसी कोठरीमें सोया करते थे और

१-भीतर बुखार न होना चाहिये, बाहर हो तो हुआ करे।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

२-मिताहार ही सात्त्विक आहार है।

३-मनुष्यकी परीक्षा नेत्रोंसे, बातचीतसे और संग-साथसे होती है। उत्तरोत्तर कनिष्ठ परीक्षा जाने।

४-दोषोंको दोष दीखते हैं अर्थात् स्वयं अनुभव किये बिना दोष नहीं दीखते; इसलिये दूसरोंके दोष देखनेकी आदत न डाले; यह आदत बढ़ते-बढ़ते गुरुदोषदर्शनतक पहुँचती है।

५-कनक, कान्ता, पुत्र आदि स्वभावतः ही मोहक होते हैं। अज्ञानी मोहके वश होकर दुखी होते हैं और ज्ञानी इसे वस्तुस्वभाव जानकर निर्मोह रहते हैं।

६-प्राप्त भोग-मोह, भुक्त भोगस्मरण और अप्राप्त भोगेच्छा—इस त्रयीका त्याग करो तो सुख न चाहोगे तो भी सुख तम्हारा पीछा न छोड़ेगा।

७-स्त्री-पुत्रादि विषयोंमें जो आसक्ति होती है, उसी आसक्तिके त्यागको वैराग्य कहते हैं।

८-जो बात जैसी है, उसे वैसा ही जानना ज्ञान कहाता है।

९-प्रतिबन्धके न रहते प्रतिबन्धका होना मानना ही प्रतिबन्ध है।

१०-सुखकी अनुकूलताके बिना मनकी प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिये जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ सुख होता ही है।

११-विषय-भोग सुखके साधन नहीं हैं, यदि होते तो सुसृष्टिमें विषयाभावके होते सुख न होता।

१२-आजकलकी हालतमें योगसाधन करना आँगनके सूर्य-प्रकाशको देखना छोड़ खिड़कियोंके छिद्रोंमेंसे उस प्रकाशको देखना है।

महाराजके भक्तोंने हुबलीकी उसी आमकी बगियामें महाराजके लिये एक मठ बनवा दिया। यह इतना बड़ा है कि उसमें दो-तीन सौ आदमी रह सकते हैं। इस मठका वातावरण महाराजके कारण अब भी परिशुद्ध, शान्त और दिव्य है। जो कोई वहाँ जाते हैं, उनका मन स्थिर-शान्त होकर वहाँसे हटना नहीं चाहता। मठके सामने एक स्वच्छ सरोवर है। शिवरात्रिके अवसरपर अष्टमीसे चतुर्दशीतक यहाँ बड़ा ही उत्सव होता है, उत्सवमें अखण्ड नामजपका एकमात्र मन्त्र है, **ॐ नमः शिवाय**। संवत् १९८६ ई० में भाद्र कृष्ण १ को आपने अन्तिम समाधि ली। (संतचरित्रमालासे)

## उदार व्यवहार हर स्थितिमें प्रसन्नतादायक

श्रीताराकान्तराय बंगालके कृष्णनगर राज्यमें उच्च पदपर आसीन थे। नरेश उन्हें अपने मित्रकी भाँति मानते थे। बहुत समयतक उन्होंने राजभवनके ही एक भागमें निवास किया। जाड़ेकी ऋतुमें एक दिन वे बहुत अधिक रात बीतनेपर जब अपने शयन-कक्षमें पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि उनका एक पुराना सेवक उनकी शय्यापर पायँतानेकी ओर सो रहा है। श्रीरायने एक चटाई उठायी और उसे बिछाकर चुपचाप भूमिपर सो गये। कृष्णनगरके नरेशको सबेरे-सबेरे उन्हें एक आवश्यक सन्देश सुनाना था। शीघ्रतावश नरेश स्वयं श्रीरायको वह सन्देश सुनाने उनके शयन-कक्षकी ओर चले आये। नरेशने उनका नाम लेकर पुकारा, इससे रायमहोदय हड़बड़ाकर उठ बैठे। शय्यापर सोया नौकर भी जाग गया और डरता हुआ एक ओर खड़ा हो गया।

राजाने समाचार सुनानेसे पहले पूछा—‘राय महाशय! यह क्या बात है, आप भूमिपर सोते हैं और सेवक शय्यापर?’

श्रीरायने नम्रतापूर्वक कहा—‘मैं रातमें लौटा तो यह शय्याके पायँताने सो गया था। मुझे लगा कि इसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा अथवा काम करते-करते बहुत अधिक थक जानेसे शय्यापर तनिक लेटते ही इसे नींद आ गयी होगी। जगा देनेसे इसे कष्ट होता और चटाईपर सो जानेमें मुझे कोई असुविधा नहीं थी; अपितु इसमें मुझे प्रसन्नता ही हुई।’

गीदड़ोंकी संख्या पूछनेपर—चौदह-पन्द्रह सौ बता दी और उतनी ही रजाइयोंकी आवश्यकता भी। सेठजीने गस्सेसे कहा—‘महाराज, ऐसा अन्धेर क्या करते हैं ! पन्द्रह

दूसरी रात फिर गीदड़ोंकी दर्द-भरी पुकार सुनकर सेठजीकी नींद उचट गयी। पूछनेपर उत्तर मिला— ‘श्रीमान्! रजाइयोंसे सर्दी तो मिट सकती है, परंतु पेटकी भूख नहीं, बेचारे कई दिनोंसे भूखे हैं, इसीलिये रो रहे हैं। दूसरे दिन बहुत-सा हलुआ-पूड़ी बनवाकर भेज दिया गया। अगली रात फिर वही आवाजें आयीं। लिहाजा, फिर पण्डितोंको बुलाया गया। इस बार हँसते हुए उन्होंने कहा—‘सेठजी! वे अच्छी तरह खा-पीकर आरामसे रजाइयाँ ओढ़कर बैठे हैं। आपको आशीर्वाद दे रहे हैं कि रोज इसी तरह देते रहेंगे।’

ये बातें तो सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहलेकी हैं, परंतु इन दिनों भी ऐसे व्यक्ति हुए हैं। मेरे मित्र श्रीमहावीर त्यागीने भारत सरकारके भूतपूर्व खाद्यमन्त्री स्वर्गीय रफी अहमद किदवईकी एक घटना सुनायी थी, जिसे सुनकर वहाँ बैठे मित्रोंकी आँखें गीली हो गयी थीं।

एक दिन किदवईजी की नई दिल्लीवाली कोठीमें  
५-६ मित्र बैठे थे, एक पुराना कांग्रेस कार्यकर्ता आकर  
उदासीभरे लहजेमें कहने लगा—“रफी भाई! लड़की

बढ़ी हो गयी है, विवाह तय हो गया है, तीन हजार ही कितना है?' [देखकर श्रीनवलालजी हाँटिये ]

रुपयेकी जरूरत है, इससे कममें किसी तरह भी काम पार नहीं पड़ेगा।' रफी साहबके पास अपना तो था ही क्या? परंतु उनके कुछ ऐसे मित्र थे, जो उनकी ऊलजलूल फरमाइशोंको भी पूरी करते रहते थे। खैर, उसको तीन हजार रुपये दिला दिये।

उसके जानेके बाद स्व० बालकृष्ण शर्मा नवीनने कहा—‘रफी! तुम भी अव्वल दर्जेके बेवकूफ हो, फिजूलमें रुपये ठगा बैठे। उस भलेमानुसकी शादी तो हुई ही नहीं, फिर यह बेटी कहाँसे आ टपकी?’ किदवईजीने मंजूर किया कि वे भी जानते हैं कि न तो उसकी शादी हुई है और न उसकी बेटी है। फिर तो त्यागीजीने किदवईजीको बुरा-भला कहना शुरू किया—‘वजारतसे कुल बाइस सौ रुपये मिलते हैं, वे तो नवाब साहब चार-पाँच दिनोंमें खर्च कर दिया करते हैं। भला, यह भी कोई बात हुई?’

देखा गया कि किदवईजीकी आँखोंमें आँसू आ गये, कहने लगे—‘भाई मेरे, यह बेचारा जरूर किसी आफतमें पड़ गया होगा, तभी तो बेटीकी शादीका नाम लेकर रुपये माँगने आया था। भला, मैं उसको बेईमान साबित करने बैठता या मुसीबतमें थोड़ी-सी सहायता करता? जिनसे दिलाता हूँ, वे तो लखपति-करोड़पति हैं। उनके लिये १०-२० हजारमें क्या फर्क पड़ता है?’

कहते हैं कि जब पण्डित नेहरू स्वर्गीय किदवईजीके गाँव गये और उन्होंने टूटे खपैरैलोंका उनका छोटा-सा मकान देखा तो उन्हें रुलाई आ गयी थी। चारों तरफ गरीबी और अभाव नजर आ रहा था। उन्होंने बेगमसे पेंशन लेनेको बहुतेरा कहा, परंतु उनका जवाब था, 'जवाहर भाई, मुझे ऐसे शख्सकी बेवा होनेका फख्र हासिल है, जिसने सारी जिन्दगी फाका-मस्तीमें गुजार दी, परंतु उम्र-भर दोनों हाथोंसे जरूरतमन्दोंको दिया ही दिया। भला, अब मैं जिन्दगीके आखिरी दिनोंमें सरकारसे पेंशन लेकर क्या करूँगी? आखिर मेरा अकेलीका खर्च

एक मास भी बीता नहीं होगा कि सहसा मेरा कौशल बीमार पड़ गया। हँसते-खेलते बालककी अस्वस्थतासे हमलोग घबरा गये। बेचारे खाँ साहब उसकी दवाके लिये रात-दिन दौड़ते फिरे। कभी किसी हकीमके पास जाते, कभी किसी डॉक्टरके पास। तात्पर्य यह कि प्रत्येक सम्भव उपचार किया गया, परंतु उससे उसे कोई लाभ नहीं हुआ। दो दिनकी ही बीमारीमें मेरा प्यारा रत्न कौशल चल बसा। घरमें रोना-चिल्लाना मच गया। जीवनमें पहला मौका था। जब मैं अपनेको सँभाल न सका, फूटकर रो पड़ा।

इस घटनाके बाद मैंने शपथ कर ली कि अब अपने द्वारा ऐसा पाप कभी नहीं होने दूँगा और परम पिता परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे जीवनमें ऐसा पाप बननेका अवसर ही न आने दें।

काठसे मारे हुए दारोगाजी किसी भाँति शवको निकलवाकर चपचाप चले गये !





श्रीरामचन्द्रजीके अन्तर्गत अनेक विचारमिलाने, प्रमाणपूर्ण

केवल एक यही तो था, जिसने श्रीरामसे संघर्ष करनेका प्रयास किया था। उनके दर्शन महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञशालाके द्वारपर किये थे। न्यायकी दृष्टिसे उद्धारका जहाँ प्रथम अधिकारी था, वहीं राजनैतिक दृष्टिसे भयमुक्त होनेके लिये उससे सर्वप्रथम मुक्त होना परमावश्यक था। यह यदि जीवित रहेगा तो राक्षसोंमें श्रीरामके बल-पौरुषका वर्णन किये बिना नहीं रहेगा। वे राक्षस अपनी तामसी प्रकृतिका तो त्याग नहीं कर पायेंगे किंतु लंकासे भाग अवश्य जायेंगे। शान्त रह नहीं पायेंगे। असहाय अवस्थामें मारे जायेंगे। राक्षसोंका विश्वविदित पराक्रम निन्दित होकर रह जायगा। अतः रक्षोद्धार-यज्ञमें प्रथम आहुति इसीकी बने।

सभी जानते हैं कि वह मारीचके पास गया। मारीचने उसे लंका लौट जानेके लिये कहा, किंतु उसके क्रोधके सम्मुख विवश होकर अन्तमें रामके हाथों अपनी मुक्तिका संकल्प लेकर स्वर्णमृग बना। उनके त्रैलोक्य-विमोहक रूपका ध्यान करता हुआ, अन्तिम समयमें दर्शनकी अदम्य-लालसाकी पूर्तिका हृदयमें विचार करता हुआ, लोकातीत शृंगारसे सुसज्जित होते हुए, पतिके साथ चितारोहण करनेको आतुर सुन्दरीके समान शृंगारपर शृंगार करते हुए चल पड़ा। 'हा सीता, हा लक्ष्मण' का उद्घोष करके, प्रभुका स्मरण करता हुआ, उनके नेत्रोंमें नेत्रोंसे समर्पण करते हुए, चला गया। सीताहरण हुआ। श्रीराम समुद्रपर सेतु निर्माणकर लंका आ गये। एक-एक कर प्रहस्त-अकंपन-अतिकाय-मकराक्ष-विरूपाक्ष-कुम्भ-निकुम्भ आदिको सेना दे-देकर भेजता रहा। उनके अन्तके समाचार आते रहे। विलाप सुनता रहा। प्रलाप करता रहा। मनमें निर्धारित कार्य-कलापके अनुसार एकके पश्चात् एकको भेजता रहा। इसी क्रममें एक दिन सोते हुए कुम्भकर्णको भी जगाकर अनन्त-निद्रा-प्राप्तिके लिये भेज दिया। मेघनादने स्पष्ट कह दिया था।

‘ब्रह्मघातिनी शक्तिका निराकरण कोई संजीवनी बूटी नहीं कर सकती। हनुमान्के द्वारा द्रोणाचलसे फूल-पत्ती मँगाना, एक नाटक है। ब्रह्मदत्त शक्तिको असफल ब्रह्माजीके आराध्य स्वयं नारायणने राम-रूपमें किया है। अब भी समय है।’ उसे कायर कहकर फटकारा। उन

दृढ़ संकल्प धारणकर, न लौटनेके लिये चला गया। दूर-दूर बैठे नरांतक और अहिरावण आमन्त्रित किये गये। दूर-दूर चले गये। जब कोई शेष नहीं बचा तो स्वयं युद्धभूमिमें आया।

प्रभुके नेत्रोंसे नेत्र मिले। उनमें याचना थी कि ‘आपकी त्रिभुवनमोहिनी रूपमाधुरी मेरे नेत्रोंका विषय बनकर भी मेरे वैरि-भावको प्रभावित न करे। विभीषणको रणमें वीरगति प्राप्त करनेवाले राक्षसोंके श्राद्ध-तर्पणके लिये मैंने ही भेजा है। इसकी रक्षा करना। रक्षेश्वरके रूपमें अजर-अमरकर, लंकाको धरतीसे लुप्त मत होने देना। उसके अस्तित्वकी रक्षा करना।’

अपने मुकुटको बाँका करके, मस्तकका बेलपत्र खिसकाकर समझा दिया कि ‘भगवान् शंकरका यह दिव्य विग्रह जो लंकेश्वरका शिरोभूषण है, मेरे सामने ही भावी लंकेश्वरके मस्तकपर प्रतिष्ठितकर, मेरे नयनोत्सव! मुझे धन्य कर देना।’

अधर तो राम-रावणमेंसे किसीके नहीं हिले। मायावी सीताका रहस्य जैसे माया और मायापतिके मध्यका विषय रहा, उसी प्रकार यह संवाद भी केवल भगवान् शंकर ही जान सके। विश्व जाना तो तब जाना जब विश्वनाथने उसे प्रकट करना उचित माना। रावणका विचार—

होइहिं भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥

और अन्तमें उसके निष्कर्षके रूपमें कि—

तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

—अतः जो निश्चय दृढ़तासे हृदयमें धारण किया, उसकी पूर्ति प्रभुके बाणोंको प्राण देकर, उस दानकी दक्षिणाके रूपमें अपनी अर्जित कीर्ति प्रदानकर रावण चला गया। रूपमाधुरीका परमासक्त, रूपमाधुरीसे अनासक्तके वेषमें जानेवाले अपने गुप्त भक्तके मस्तक धरतीकी धूलिमें प्रभुने भी नहीं गिरने दिये। नीलकण्ठके कण्ठका आभूषण बना दिया। खलनायक ही सही किंतु भारतीय संस्कृतिके नायककी महागाथाका सदा-सदाके लिये अविभाज्य अंग बनकर रह गया। रावणके इस भावको कौन समझेगा? रावणने अपना कृत्रिम चरित्र प्रकटकर, रामचरित्रकी वास्तविकता सहजमें समझा दी। यही कहा जा सकता है कि—

## संन्यासका अर्थ

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

‘ममता, कामना और तादात्म्यके त्यागका नाम ही संन्यास है। कपड़े रँगना और किसी सम्प्रदाय विशेषमें दीक्षा लेना तो संन्यासका बाहरी चिह्न है। केवल बाह्य चिह्न धारण करनेसे किसीकी मुक्ति नहीं होती।’

‘सही करना, कुछ न चाहना और प्रभुके शरणागत होना, यह योग, बोध, प्रेमकी तैयारी है और इसीसे योग, बोध, प्रेमकी प्राप्ति होती है।’

‘जगत्से सम्बन्ध टूटकर उस अनन्तके साथ अहंका सम्बन्ध जुड़ जानेका नाम ही ‘योग’ है। इसीसे सब संकल्पोंकी निवृत्ति होती है और उस अनन्तको सब जगह सबमें देखना ही ‘बोध’ है। योगसे दोष और कामनाओंका त्याग होता है और उस अनन्तको अपना मानना एवं अहंको उनके समर्पित करना ही प्रेम है, यानी प्रेमकी प्राप्ति होती है। केवल गृहत्याग करने एवं वस्त्र रँगनेमात्रसे किसीको योग, बोध, प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह त्याग नहीं वरन् त्यागके भेषमें अपने कर्तव्यसे पलायन करना है।’

एक प्रश्न उठता है कि साधु माने क्या? इसकी व्याख्या पूर्व प्रवचनमें निम्नलिखित रूपमें की गयी थी, जो इस क्रममें प्रासंगिक है—

**प्रश्न**—साधु माने क्या?

**उत्तर**—साधु संसारके बाहर चले तो नहीं जाते, संसारसे सम्बन्ध अवश्य तोड़ देते हैं।

शरीरको गंगामें तो नहीं फेंक देते, शरीरसे सम्बन्ध अवश्य तोड़ देते हैं। साधु माने यही कि जो संसारसे सम्बन्ध तोड़ दे, चाहे घरमें रहकर, चाहे वनमें जाकर। साधु वह, जो किसीको हानि न पहुँचाये। जो प्रभुको पसन्द करे। तुम मानव हो, प्रसन्नतापूर्वक रहो, दुखी मत रहो, खिन्न मत रहो, व्यर्थ चिन्तन मत करो, थोड़े दिनका मेला है—सदा नहीं रहेगा।

हे मानव! भेषके साधु सब नहीं हो सकते, लेकिन बिना भेषके साधु हर भाई, हर बहन हो सकती है।

किसीको हानि मत पहुँचाओ। किसीको बुरा मत समझो और यथाशक्ति जिस परिवारमें, जिस समाजमें रहते हो, उसके काम आओ। क्या यह जीवन सबको नहीं मिल सकता? मिल सकता है। तो साधु माने साधक है; क्योंकि—

(१) हमें संसारकी सेवा करना है।

(२) हमें प्रभुका प्रेमी होना है।

(३) हमें अचाह होना है।

## दयाका पुरस्कार

एक व्यक्ति शिकारके लिये जंगलमें गया। वहाँ उसने एक हरिनीको देखा, उसके साथ उसका छोटा बच्चा भी था। शिकारी दौड़ा, हरिनी तो डरकर जंगलमें छिप गयी, पर मृगशावक पकड़ा गया। शिकारी जब मृगीके उस बच्चेको लेकर चला, तब हरिनी भी निकल आयी और बच्चेके स्नेहवश वह भी पीछे-पीछे चलने लगी। शिकारीने कुछ दूर आनेके बाद पीछेकी ओर मुड़कर देखा, हरिनीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी और वह पीछे-पीछे चली आ रही थी। शिकारी अपने गाँवके समीप आ गया था। तब भी हरिनी उसी प्रकार रोती चली आ रही थी। उसको दया आ गयी। उसने बच्चेको छोड़ दिया। बच्चा छूटते ही छलाँग मारकर अपनी माँ (हरिनी)-के पास पहुँच गया। हरिनी मूक आशीर्वाद देती हुई बच्चेको लेकर लौट गयी। रातको शिकारीने स्वप्नमें देखा—कोई कह रहा है—‘इस दयाके फलस्वरूप तुम्हें बादशाही मिलेगी।’ आगे चलकर यही व्यक्ति गजनीका बादशाह हुआ।

# गोमूत्रमें छिपे जीवनसूत्र

❖ गाय जहाँपर खड़ी होती है, वहाँपर जो गोमूत्र गिरता है, उस जगहकी मिट्टीको खेतोंमें यूरियाकी तरह छींटनेसे यह यूरिया खादका एक बहुत अच्छा और सफल विकल्प है।

❖ गोमूत्र १० गुना पानीमें मिलाकर फसलपर छिड़कनेसे सम्पूर्ण खादकी पूर्ति हो जाती है।

✱ गायके मूत्रमें कार्बोलिक एसिड होता है, जो कीटाणुनाशक है, अतः शुद्धि और स्वच्छता बढ़ाता है।

❖ गोमूत्र शक्तिशाली कीटनाशक होनेके कारण फसलपर लगे कीटोंको भी छिड़काव करनेपर नष्ट कर देता है।

❖ गोमूत्र एक दिव्य औषध एवं कीट-नियन्त्रक है।

❖ उत्तरकाशीके निकट एक ग्राम है, जहाँ वर्षभर गोमाताओंका गोमूत्र संचितकर पाण्डु मृत्तिका मिलाकर घरोंकी पुताई होती है, जिसका प्रभाव तत्क्षण देखनेमें यह आया है कि उस स्थानपर छिपकली, मच्छर, मक्खी इत्यादि विषधारी जन्तु प्रवेश नहीं करते।

❖ गोमूत्र विषैले प्रभावोंको दूर करनेवाला एक प्रतिविष (एंटीडोट) है, विषनाशक (एण्टीटॉक्सिक) है, रोगाणुनाशक (एंटीसेप्टिक) है, एन्टीबायोटिक है, घावमें पैदा होनेवाले पीव (पस)-को सुखाता है, रोगावरोधक शक्तिको बढ़ाता है। गोमूत्रमें विटामिन 'बी' तथा कार्बोलिक एसिड होता है, जो रोगाणुओंका नाश करता है।

❖ गोमूत्र रक्तमें बहनेवाले दूषित कीटाणुओंका नाश करता है।—डॉ० सिमर्स (ब्रिटेन)

❖ किसी भी प्रकारकी औषधियोंकी मात्राका अतिप्रयोग हो जानेसे जो तत्त्व शरीरमें रहकर किसी प्रकारसे उपद्रव पैदा करते हैं, उनको गोमूत्र अपनी विषनाशक शक्तिसे नष्टकर रोगीको निरोगी करता है।

❖ गोमूत्रमें ताँबा भी होता है, जो मानव शरीरमें जानेपर स्वरूपमें परिवर्तित होता है, जो सभी प्रकारसे विषनाशक है।

❖ विद्युत्-तरंगें हमारे शरीरको स्वस्थ रखती हैं।  
ये वातावरणमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे विद्यमान हैं। गोमूत्रसे प्राप्त ताम्र तत्त्व विद्युतीय आकर्षण गुणके कारण इनको शरीरमें आकर्षित करता है।

❖ अमेरिकाके डॉ० क्राफोड हेमिल्टन तथा मेकिन्तोशने बहुत पहले ही यह सिद्ध कर दिया था कि गोमूत्रके प्रयोगसे हृदय-रोग दूर होता है और मूत्र खुलकर आता है।

❖ बेलफास्टके प्रो० सिमर्स तथा अल्म्टरके प्रो० कर्कने गोमूत्रके महत्त्वके विषयमें अनेकों प्रयोग किये हैं और उनका कहना है कि गोमूत्र रक्तमें रहनेवाले दूषित कीटाणुओंका नाशक होता है। सजीव मांसपेशियोंके लिये यह हानि नहीं पहुँचाता, घावोंकी विषाक्तताको दूर करता है और पुराने दोषसे रक्तद्वारा संक्रान्त घावमें बढ़ते हुए पीबको रोकता है।

❖ डॉ० चाटी अपना अनुभव इस प्रकार बतलाते हैं, चालीस वर्षकी अपनी नौकरीमें मैंने कितने ही जलोदर रोगियोंका इलाज किया और पेट चीरकर २-३-४ बार भी पेटका पानी निकाल दिया, किंतु उनमेंसे अधिकांश रोगियोंकी मृत्यु हो गयी। मैंने सुना और आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें पढ़ा भी था कि इस रोगपर गोमूत्रका उपयोग बहुत लाभकारी होता है, फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता था। एक बार एक साधु-महात्माने गोमूत्रके गुणोंका बहुत वर्णन कर कहा कि इसका जलोदरपर बहुत ही अच्छा उपयोग होता है। मैंने गोमूत्रका प्रयोग करके देखा तो विलक्षण लाभ हुआ।

❖ भारतमें अबतक किये गये शोध-परिणामोंसे ज्ञात होता है कि गोमूत्रका उपयोग प्रतिजैविक तथा कैंसर उपचारकी औषधोंके निर्माणमें जैववर्धक (बायो-इन्हान्सर)-की भूमिका कुशलतासे निभाता है। जैववर्धक पदार्थ उन्हें कहते हैं, जिनमें उपचार-क्षमता स्वयं अपने-आप निहित नहीं होती, परंतु वे अन्य औषधियोंमें अपनी उपस्थितिसे एक उत्प्रेरक (कैटलाइजर)-की



# साधनोपयोगी पत्र

(१)

## प्रेमके नामपर....

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तर लिखनेमें कुछ देर हो गयी। इधर काम भी ज्यादा रहा और स्वभावदोष तो है ही। क्षमा कीजियेगा।

आपने अपने मनकी हालत बताकर मेरी सम्मति पूछी, सो इस सम्बन्धमें मैं क्या कहूँ? यदि आपके मनमें पवित्रता है और उधरसे भी कोई विकार नहीं है तो बहुत ही अच्छी बात है, परंतु जहाँतक मैं समझ सका हूँ— इस स्पष्टोक्तिके लिये आप क्षमा कीजियेगा—आप लोगोंका प्रेम पवित्र नहीं है। जिस प्रेममें भोग-सुखकी इच्छा है, संयमका अभाव है, कर्तव्य-विमुख होकर केवल पास रहने या देखते रहनेकी ही चेष्टा है, जरा भी मानसिक विकार है, स्वार्थ-साधनका प्रयास है और परस्पर पवित्रता बढ़ानेकी जगह इन्द्रिय-तृप्तिकी सुविधा खोजी जा रही है, वह प्रेम कदापि पवित्र नहीं हो सकता।

प्रेमका प्रधान स्वरूप है निज-सुखकी इच्छाका सर्वथा त्याग। भोगप्रधान पाशविक इन्द्रिय-सुखका प्रयास तो पवित्र प्रेमके नामको कलंकित करनेवाला पाप है। प्रेम सदा देता ही रहता है, जरा भी बदला नहीं चाहता। असलमें जिस प्रेमके आधार भगवान् नहीं हैं—वह यथार्थ प्रेम नहीं है। प्रेम सदा स्वार्थशून्य है, इन्द्रियविकाररहित पवित्र है, भोगेच्छाके लिये उसमें स्थान नहीं। आजके मनुष्यने तो मोहको ही प्रेमका नाम दे रखा है और इसीका फल है महान् मानसिक अशान्ति और दारुण दुःखभोग।

जिनका परस्पर पवित्र प्रेम है, उनको परस्पर पवित्रता, पुण्य और सदाचरणकी उन्नतिमें सहायक होना चाहिये। परस्पर आत्मसन्धिका क्रियात्मक अन्धकार

करना चाहिये। त्याग और भगवदनुरागकी वृद्धि करनी चाहिये। आपके पत्रसे पता लगता है कि आप लोगोंको ये बातें रुचती ही नहीं। आप तो कल ही नाश हो जानेवाली चमड़ीके रूपपर और काल्पनिक गुणोंपर मोहित हैं। कुछ ही कालमें यदि ये गुण न दिखायी दें तो आपका प्रेम कच्चे सूतके धागेकी तरह टूट जा सकता है। यह भी कोई प्रेम है? प्रेम कभी टूटता ही नहीं। घटता भी नहीं। जितना है उतना ही नहीं रहता—वह तो प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है। उसमें रूप-गुणकी अपेक्षा नहीं है, वह तो प्रेमस्वरूप अच्युत परमात्माकी पवित्र देन है। आप इस मोहका त्याग कीजिये, इसीमें भलाई है। नहीं तो प्रेमके नामपर कामके कलुषित नरक-कुण्डमें जा गिरियेगा। सावधान! शेष प्रभुकृपा।

(२)

## असली सद्गुण

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। नाटकमें पाट करनेकी तरह किये जानेवाले दिखावटी सत्य, अहिंसा, अक्रोध, क्षमा, ब्रह्मचर्य, दया आदिसे कुछ भी नहीं होता। उसी प्रकार नाटकीय ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और प्रेम भी निरर्थक ही हैं। जैसे नाटकका राजा वस्तुतः वैसा नहीं है। मुझको अच्छा बोलना—लोगोंको समझाना आ गया। बड़ी-बड़ी ऊँची बातोंका उपदेश भी मैं करने लगा, परंतु यदि मैं स्वयं उनका मर्म नहीं समझा और मेरे जीवनमें उन ऊँची बातोंने प्रवेश न किया तो मुझे क्या लाभ हुआ? धनके झूठे आडम्बरसे कोई धनी थोड़े ही हो गया? अतएव जीवनमें सात्त्विक गुणोंका और भक्ति, वैराग्य, ज्ञानका सच्चा विकास होना चाहिये। बड़ी लगनसे ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। यह होता है—दूसरोंके दोष न देखकर उनके गुण देखनेसे, अपने अवगुण देखनेसे और जी-जानसे अपने अवगुणोंको मरने करके सद्गुणोंका प्रकाशक लिए अधिक प्रयत्न

करनेसे। लोग दूसरोंके दोष देखते हैं, अपने नहीं देखते—फल यह होता है कि अपने अन्दर दोष आ-आकर भरते चले जाते हैं। सारे सद्गुण हमारे व्यवहारमें उतर आने चाहिये। बहुत बार आदमी भूलसे व्यावहारिक सत्तामें दोषोंका रहना अनिवार्य मानकर, युक्तिपूर्वक दोषोंका समर्थन करने लगता है, यह मनका बड़ा धोखा है। दोषका समर्थन किसी भी रूपमें नहीं करना चाहिये और अपने एक-एक दोषको दुःसह समझकर उसका त्याग करना चाहिये। सद्गुण और सद्व्यवहार केवल कथनमात्र न होकर क्रियात्मक होने चाहिये और प्रत्येक प्रतिकूल अवसरपर सावधानीके साथ डटे रहना चाहिये। जिससे सद्गुण और सद्व्यवहारका अभाव न हो जाय। धर्मकी परीक्षा काम पड़नेपर ही होती है। एकान्तमें सच्ची भक्ति हो, वही भक्ति है। सत्य और अहिंसा—जीवनमें उतरे रहें, वही सच्चे सत्य और अहिंसा व्रत हैं। शेष प्रभूकृपा।

(३)

## भगवद्धक्ति और दैवी सम्पत्ति

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। भगवान्‌के नाम और भगवद्भक्तिकी महिमा अनन्त है। आप और हम तो क्षुद्र हैं—महापुरुष भी इनकी महिमा पूरी-पूरी नहीं गा सकते, परंतु भाई साहब! आप जिस ढंगसे भक्ति और भगवन्नामका माहात्म्य बतलाते हैं, वह मुझे पसन्द नहीं है। मैं तो मानता हूँ, भगवन्नामसे पापका लेश भी नहीं रहता। फिर यह कैसे स्वीकार करूँ कि भगवन्नामका सहारा लेकर दुष्कर्म करते रहना—जान-बूझकर भी उनसे हटनेका प्रयास और अभिलाषा न करना उचित है? मेरी समझसे भगवद्भक्तिके साथ दैवी सम्पत्तिका अनिवार्य संयोग है। कोई भगवद्भक्त भी बने और बेरोक-टोक व्यभिचार और परधन-हरण भी करता रहे। घण्टे, आध घण्टे कीर्तन कर ले और दिन-रात विना किसी

ग्लानिके खुशी-खुशी जूए, शराब, परनिन्दा, परदोष-दर्शन और दूसरोंको ठगने और कष्ट पहुँचानेमें बीतें, यह कैसी भक्ति है, कुछ समझमें नहीं आता। यह सत्य है कि इससे अधिक पाप करनेवालोंको भी भगवन्नाम-कीर्तन और भक्ति करनेका अधिकार है, भगवान्का द्वार पापियोंके लिये बन्द नहीं है तथा भगवन्नाम औ भगवद्भक्तिसे पापी भी शीघ्र पुण्यात्मा-महात्मा भी बन सकते हैं; परंतु जिनके मनमें बुरे कर्मोंसे जरा भी ग्लानि नहीं और जो इसीलिये भगवन्नाम लेते हैं कि उनके पाप ढके रहें या पाप करनेमें उन्हें सुविधा मिल जाय, उनके लिये बहुत विचारणीय बात है। यह सत्य है कि भगवन्नामकी पाप-नाश करनेकी शक्ति पापीके पाप करनेकी शक्तिसे कहीं अधिक है और अन्तमें उसके पापोंका नाश करके भगवन्नाम उसे तार देगा, परंतु जान-बूझकर पाप करनेके लिये ही नाम लेना भगवद्भक्तिका आदर्श क्योंकर माना जा सकता है? मेरा तो यह विश्वास है कि जो लोग भगवान्की सच्ची भक्ति करते हैं, उनमें मनका निग्रह, इन्द्रियोंका वशमें होना, अहिंसा, सत्य, सेवा, क्षमा, परदुःख-कातरता, मैत्री, दया आदि गुण क्रियात्मकरूपमें प्रत्यक्ष आ जाते हैं और इनके आनेपर ही भक्ति आदर्श मानी जाती है। अतएव मेरी तो आपसे प्रार्थना है कि आप भक्तिके साथ उसकी चिरसंगिनी—जिसके बिना भक्ति रह नहीं सकती—दैवी सम्पत्तिका भी पूरा आदर करें, तभी भक्तिका यथार्थ विकास होगा और तभी तुरंत शान्ति मिलेगी। यह याद रखना चाहिये कि भगवद्भक्तिके बिना दैवी सम्पत्ति प्राणहीन है और दैवी सम्पत्तिके बिना भक्ति नहीं होती। इन दोनोंका परस्पर अन्योन्याश्रयसम्बन्ध है। भगवद्भक्तमें कैसे गुण होने चाहिये, इसका विशेष विवरण गीतामें भगवान्ने बतलाया है। इसे बारहवें अध्यायके १३वें से २०वें श्लोकतक देखना चाहिये। शेष प्रभुकृपा।



## व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा सायं ५।३२ बजेतक	मंगल	कृत्तिका दिनमें ३।४८ बजेतक	१५ नवम्बर	×
द्वितीया दिनमें ३।१३ बजेतक	बुध	रोहिणी " २।१२ बजेतक	१६ "	×
तृतीया " १।३ बजेतक	गुरु	मृगशिरा " १२।४४ बजेतक	१७ "	×
चतुर्थी " ११।७ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा " ११।२९ बजेतक	१८ "	×
पंचमी " ९।२९ बजेतक	शनि	पुनर्वसु " १०।३३ बजेतक	१९ "	भद्रा रात्रिमें २।९ बजेसे, मिथुनराशि रात्रिमें १।२८ बजेसे, वृश्चिक संक्रान्ति सायं ५।५७ बजे, हेमन्तऋतु प्रारम्भ।
षष्ठी " ८।१४ बजेतक	रवि	पुष्य " ९।५७ बजेतक	२० "	भद्रा दिनमें १।३ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।८ बजे।
सप्तमी प्रातः ७।२३ बजेतक	सोम	आश्लेषा " ९।४७ बजेतक	२१ "	कर्कराशि रात्रिमें ४।४७ बजेसे।
अष्टमी " ७।३ बजेतक	मंगल	मघा " १०।६ बजेतक	२२ "	अनुराधाका सूर्य रात्रिमें १२।५८ बजे।
नवमी " ७।१२ बजेतक	बुध	पू० फा० " १०।५४ बजेतक	२३ "	भद्रा दिनमें ८।१४ बजेसे रात्रिमें ७।४९ बजेतक, मूल दिनमें ९।५७ बजेसे।
दशमी दिनमें ७।५५ बजेतक	गुरु	उ० फा० " १२।१३ बजेतक	२४ "	सिंहराशि दिनमें ९।४७ बजेसे।
एकादशी " ९।४ बजेतक	शुक्र	हस्त " १।५९ बजेतक	२५ "	सायन धनुराशि का सूर्य दिनमें २।१९ बजे, मूल दिनमें १०।६ बजेतक।
द्वादशी " १०।४२ बजेतक	शनि	चित्रा सायं ४।१० बजेतक	२६ "	भद्रा रात्रिमें ७।३४ बजेसे, कन्याराशि सायं ५।१३ बजेसे।
त्रयोदशी " १२।३७ बजेतक	रवि	स्वाती रात्रिमें ६।३७ बजेतक	२७ "	भद्रा दिनमें ७।५५ बजेतक।
चतुर्दशी दिनमें २।४४ बजेतक	सोम	विशाखा " ९।१३ बजेतक	२८ "	तुलाराशि रात्रिमें ३।५ बजेसे, उत्पन्नाएकादशीव्रत ( सबका )।
अमावस्या सायं ४।५४ बजेतक	मंगल	अनुराधा " ११।४८ बजेतक	२९ "	शनिप्रदोषव्रत।
				भद्रा दिनमें १२।३७ बजेसे रात्रिमें १।४१ बजेतक।
				वृश्चिकराशि दिनमें २।३४ बजेसे।
				भौमवती अमावस्या, मूल रात्रिमें ११।४८ बजेसे।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा रात्रिमें ६।५३ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा रात्रिमें २।११ बजेतक	३० नवम्बर	धनुराशि रात्रिमें २।११ बजेसे।
द्वितीया " ८।३६ बजेतक	गुरु	मूल " ४।१७ बजेतक	१ दिसम्बर	मूल रात्रिमें ४।१७ बजेतक।
तृतीया " ९।५२ बजेतक	शुक्र	पू० षा० रात्रिशेष ५।५६ बजेतक	२ "	ज्येष्ठानक्षत्रका सूर्य रात्रिमें ४।१० बजे।
चतुर्थी " १०।४३ बजेतक	शनि	उ० षा० अहोरात्र	३ "	भद्रा दिनमें १०।१८ बजेसे रात्रिमें १०।४३ बजेतक, मकरराशि दिनमें १२।१४ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी " ११।१ बजेतक	रवि	उ० षा० प्रातः ७।९ बजेतक	४ "	श्रीरामविवाह।
षष्ठी " १०।४७ बजेतक	सोम	श्रवण दिनमें ७।४९ बजेतक	५ "	कुम्भराशि रात्रिमें ७।५५ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ७।५५ बजे।
सप्तमी " १०।५ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा " ८।० बजेतक	६ "	भद्रा रात्रिमें १०।५ बजेसे।
अष्टमी " ८।५७ बजेतक	बुध	शतभिषा प्रातः ७।४३ बजेतक	७ "	भद्रा दिनमें ९।३१ बजेतक, मीनराशि रात्रिमें १।११ बजेसे।
नवमी " ७।२६ बजेतक	गुरु	पू० भा० प्रातः ७।२ बजेतक	८ "	मूल रात्रिशेष ६ बजेसे।
दशमी सायं ५।३५ बजेतक	शुक्र	रेवती रात्रिमें ४।४१ बजेतक	९ "	भद्रा रात्रिमें ४।३२ बजेसे, मेषराशि रात्रिमें ४।४१ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ४।४१ बजे।
एकादशी दिनमें ३।२९ बजेतक	शनि	अश्विनी रात्रिमें ३।१० बजेतक	१० "	भद्रा दिनमें ३।२९ बजेतक, मोक्षदाएकादशीव्रत (सबका), श्रीगीता-जयन्ती, मूल रात्रिमें ३।१० बजेतक।
द्वादशी " १।१४ बजेतक	रवि	भरणी " १।३२ बजेतक	११ "	प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " १०।५३ बजेतक	सोम	कृत्तिका " ११।५० बजेतक	१२ "	वृषराशि दिनमें ७।६ बजेसे।
चतुर्दशी प्रातः ८।३३ बजेतक	मंगल	रोहिणी " १०।१२ बजेतक	१३ "	भद्रा दिनमें ८।३३ बजेसे रात्रिमें ७।२४ बजेतक, पूर्णिमा।
पूर्णिमा रात्रिशेष ६।१५ बजेतक				

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।२१ बजेतक	शुक्र	पू० षा० दिनमें १।१६ बजेतक	३० दिसम्बर	मकरराशि रात्रिमें ७।३६ बजेसे।
द्वितीया " २।९ बजेतक	शनि	उ० षा० " २।३५ बजेतक	३१ "	×
तृतीया " २।२३ बजेतक	रवि	श्रवण " ३।२२ बजेतक	१ जनवरी	×
चतुर्थी " २।७ बजेतक	सोम	धनिष्ठा " ३।४१ बजेतक	२ "	जनवरी २०१७ प्रारम्भ, भद्रा रात्रिमें २।१५ बजेसे, कुंभराशि रात्रिमें ३।३२ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ३।३२ बजे।
पंचमी " १।२२ बजेतक	मंगल	शतभिषा " ३।३० बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें २।७ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
षष्ठी " १२।१२ बजेतक	बुध	पू० भा० " २।५४ बजेतक	४ "	रवियोग दिनमें ३।३० बजेसे।
सप्तमी " १०।४० बजेतक	गुरु	उ० भा० " १।५९ बजेतक	५ "	मीनराशि दिनमें ९।३ बजेसे।
अष्टमी " ८।४६ बजेतक	शुक्र	रेवती " १२।४३ बजेतक	६ "	भद्रा दिनमें १०।४० बजेसे रात्रिमें ९।४३ बजेतक, मूल दिनमें १।५९ बजेसे।
नवमी रात्रिशेष ६।४० बजेतक				मेघराशि दिनमें १२।४३ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें १२।४३ बजे।
दशमी रात्रिमें ४।२४ बजेतक	शनि	अश्विनी " ११।१५ बजेतक	७ "	मूल दिनमें ११।१५ बजेतक।
एकादशी " २।३ बजेतक	रवि	भरणी " ९।३८ बजेतक	८ "	भद्रा दिनमें ३।१४ बजेसे रात्रिमें २।३ बजेतक, वृषराशि दिनमें ३।१३ बजेसे, पुत्रदा एकादशीव्रत ( सबका )।
द्वादशी " ११।४२ बजेतक	सोम	कृत्तिका प्रातः ७।५६ बजेतक	९ "	×
त्रयोदशी " ९।२६ बजेतक	मंगल	मृगशिरा रात्रिमें ४।४५ बजेतक	१० "	×
चतुर्दशी " ७।२० बजेतक	बुध	आर्द्रा " ३।२३ बजेतक	११ "	×
पूर्णिमा सायं ५।२६ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु " २।१७ बजेतक	१२ "	×
				मिथुनराशि सायं ५।३२ बजेसे, भौमप्रदोषव्रत।
				भद्रा रात्रिमें ७।२० बजेसे रात्रिशेष ६।२३ बजेतक, उत्तराषाढाका सूर्य दिनमें ७।३४ बजे।
				कर्कराशि रात्रिमें ८।३३ बजेसे, पूर्णिमा, माघस्नान प्रारम्भ।



## पढ़ो, समझो और करो

(१)

### पापकी कमाईसे पाप ही पनपता है

हमारा पैतृक घर उत्तर प्रदेशके जनपद मैनपुरीके मुहल्ला मोखमगंजमें स्थित था। चूँकि हमारे इस घरमें पहले कभी एक छापाखाना था, इसलिये पूरे मोहल्लेका नाम ही 'छुपट्टी' पड़ गया था। हमारे दादाके परदादा मुंशी कन्हैयालालजीने यह घर खरीदा था, इसलिये लोग इसे 'कन्हैया-कुटीर' के नामसे जानते थे। हमारे घरके ही सामनेके मकानमें, सड़कके किनारे-किनारे चार-पाँच छोटे-छोटे कमरे थे, जिन्हें कोठरियाँ कहते थे। इन कोठरियोंमें कुछ लोग, जिनके परिवार नहीं थे, किरायेपर रहते थे। खुद खाना बनाते थे, खाते थे और अपनी जिन्दगी बसर करते थे। हमारे घरके ठीक सामनेवाली कोठरीमें एक अधेड़ व्यक्ति आकर रहने लगा था। उसने अपना नाम दुर्गाप्रसाद बताया था, लेकिन लोग उसे 'दुर्गू' कहते थे।

दुर्गूका अपना कोई नहीं था। कमानेके नामपर तो वह कुछ भी नहीं करता था। कभी कभार-बाल-बच्चोंके लिये 'बुढ़ियाके बाल', सीटियाँ तथा छोटे-छोटे खिलौने लाकर बेचा करता था। शेष समय आरामसे पड़ा सोता रहता था। अपनेको बड़ा गरीब इंसान बताता था। इसलिये मोहल्लेवाले इसे तीज-त्यौहारोंपर खाना खिला देते थे और दयावश कभी-कभी इनाम-इकराम एवं बख्शीश भी दे दिया करते थे।

जिस तरहसे कोई ला-इलाज बीमार व्यक्ति अपनी जिन्दगीके दिन काटता है, 'दुर्गू' भी अपना जीवन इसी प्रकार काट रहा था। उसकी कोई इच्छा नहीं थी। न उसे किसीने कभी पूजा-पाठ करते देखा था। न कभी सैर-सपाटा करते देखा था, न उसको किसीने मनोरंजन करते देखा था। उसका जीवन बुझे-बुझेसे दीपकके समान था। कभी-कभी चिलम पी लेता था और खाँसता रहता था।

उसके जीवनमें कोई उतार-चढ़ाव नहीं था। सीधी सपाट जिन्दगी थी उसकी। उसके अन्दर कोई आकांक्षा महत्वाकांक्षा भी नहीं थी। शहरमें दशहराका मेला लगता था तो वह उसमें भी कभी नहीं जाता था। जेलमें जैसे कोई कैदी रहता है, अपना जीवन काटता है, वैसे ही वह अपना जीवन काट रहा था। कभी भी किसी खोमचेवालेसे पैसे-दो-पैसेकी चीज नहीं खरीदकर खाता था। बुझे-बुझे दीपक-जैसी उसकी जिन्दगी चल रही थी। आश्चर्य तो इस बातका था कि वह कभी बीमार भी नहीं पड़ता था। लोग उसपर तरस खाकर कभी-कभी खानेके लिये खाना परोसकर दे जाया करते थे।

×

×

×

एक दिन दुर्गू सबेरेसे उठा नहीं तो उठा ही नहीं। उससे उठातक नहीं गया। दिन-पर-दिन उसका जर्जर शरीर और जर्जर होता चला गया। अब तो उसने चिलम पीना भी छोड़ दिया था। संसारमें उसका कोई नहीं था—न वह किसीसे कोई बात ही करता था। अपनेको छिपाये-छिपाये रखता था। मानो कोई अवधूत हो। जैसे कोई गुप्त-साधना करनेवाला कोई तान्त्रिक अघोरी हो।

उसके चेहरेपर न कोई होलीपर अबीर-गुलाल लगाता था, न दीपावलीपर कोई उसकी कोठरीमें दीपक ही जलाकर रखता था। अकेला चारपाईपर पड़ा रहता था। ऐसा लगता था, मानो वह किसी संगीन जुल्ममें पकड़े जानेके डरसे भेष बदलकर कोई भागा हुआ मुजरिम हो। गुनहगार हो, जो अपनी शेष जिन्दगी किसी तरह अँधेरेमें बिता रहा हो। किसीको क्या पड़ी है जो कोई उसमें दिलचस्पी ले। सभी उससे दूर-दूर ही रहते थे।

×

×

×

एक दिन उससे उठा नहीं गया। टूटी-फूटी-सी चारपाईपर पड़े-पड़े ही उसने अपना दम तोड़ दिया। मोहल्लेके कुछ जागरूक सज्जनोंने उसके लिये अर्थी



नियमित सेवनसे शोथ और उदर रोगोंसे मुक्ति मिल जाती है ।

❖ पुनर्नवाकी पाँच-सात संख्यामें ली गयी पत्तियोंके दो या तीनकी संख्यामें गोलमिर्चको पीसकर नेसे मूत्रकृच्छसे छुटकारा मिलता है।

❖ पुनर्नवाकी पत्तियोंके ५ से १० मि०ली० स्वरसको मिलाकर पिलानेसे मूत्रकी रुकावट मिट जाती है।

❖ पुनर्नवा पंचांग या केवल मूलके सूखे चूर्णकी ग्राम मात्रा गरम पानीके साथ प्रयोगसे शोथ, चर्छ तथा हृदय विकारमें राहत मिलती है।

❖ पुनर्नवाके पंचांग या केवल जड़के चूर्णको साथ लेनेसे शरीर पुष्ट होता है।

❖ सफेद पुनर्नवाकी १०-२० ग्राम जड़को रोदकके साथ पीसकर देनेसे प्लीहावृद्धि नियन्त्रित होती है।

❖ पुनर्नवाके क्वाथके साथ कपूर और सोंठकी ग्राम मात्राके साथ सात दिनके सेवनपर आम वातसे मिल जाती है।

❖ सफेद पुनर्नवाकी जड़को तेलमें पकानेके बाद तेलसे पैरकी मालिश करनेपर वात संकटसे मुक्ति जाती है।

❖ चातुर्थिक ज्वरमें सफेद पुनर्नवाकी जड़की दो मात्रा दूध या पानके पत्तेके रसमें सुबह-शाम से लाभ मिलता है।

❖ मूत्रमार्गमें संक्रमणसे पेशाबमें होनेवाली जलन ज्वरसे छुटकारेमें पुनर्नवाका क्वाथ या चूर्ण अत्यन्त प्रकारी है।

❖ पुनर्नवाके जड़का २ ग्राम चूर्ण दूधके साथ  
मेत छः मासतक सेवन करनेपर आयु बढ़ती है तथा  
वस्था तरुणईमें बदल जाती है।

❖ पुनर्नवा पुष्पको सुखाकर बने चूर्णकी एक ग्राम  
तीन ग्राम मिश्री मिलाकर खानेके बाद ऊपरसे  
पीनेसे बलवृद्धि होती है और प्रमेहसे छुटकारा  
पाता है।—डॉ० दिलीप कुमार

❖ पुनर्नवा मूलके चूर्णको चायके एक चम्मचकी मात्राके बराबर दो बार सेवन करनेसे मृदु विरेचन होता है।

मिलता है ।—डॉ० दिलीप कुमार

## मनन करने योग्य

### न्याय और धर्म

काश्मीरके हिन्दू-नरेश अपनी उदारता, विद्वत्ता और न्यायप्रियताके लिये बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। उनमेंसे महाराज चन्द्रापीड उस समय गद्दीपर थे। उन्होंने एक देवमन्दिर बनवानेका संकल्प किया। शिल्पियोंको आमन्त्रण दिया गया और राज्यके अधिकारियोंको शिल्पियोंके आदेशोंको पूरा करनेकी आज्ञा हो गयी।

शिल्पियोंने एक भूमि मन्दिर बनानेके लिये चुनी, परन्तु उस भूमिको जब वे मापने लगे, तब उन्हें एक व्यक्तिने रोक दिया। भूमिके एक भागमें उस व्यक्तिकी झोपड़ी थी। उस झोपड़ीको छोड़ देनेपर मन्दिर ठीक बनता नहीं था। राज्यके मन्त्रीगण उस व्यक्तिको बहुत अधिक मूल्य देकर वह भूमि खरीदना चाहते थे; किन्तु वह किसी भी मूल्यपर अपनी झोपड़ी बेचनेको उद्यत नहीं था। बात महाराजके पास पहुँची। उन न्यायप्रिय धर्मात्मा राजाने कहा—‘बलपूर्वक तो किसीकी भूमि छीनी नहीं जा सकती। मन्दिर दूसरे स्थानपर बनाया जाय।’

शिल्पियोंके प्रधानने निवेदन किया—‘पहली बात तो यह कि उस स्थानपर मन्दिर बननेका संकल्प हो चुका, दूसरे आराध्यका मन्दिर सबसे उत्तम स्थानपर होना चाहिये और उससे अधिक उपयुक्त स्थान हमें दूसरा कोई दीखता नहीं।’

महाराजकी आज्ञासे वह व्यक्ति बुलाया गया। नरेशने उससे कहा—‘तुम जो मूल्य चाहो, तुम्हारी झोपड़ीका दिया जायगा। दूसरी भूमि तुम जितनी कहोगे, तुम्हें मिलेगी और यदि तुम स्वीकार करो तो उसमें तुम्हारे लिये भवन भी बनवा दिया जाय। धर्मके काममें विघ्न क्यों डालते हो? देवमन्दिरके निर्माणमें बाधा डालना पाप है, यह तो तुम जानते ही होगे।’

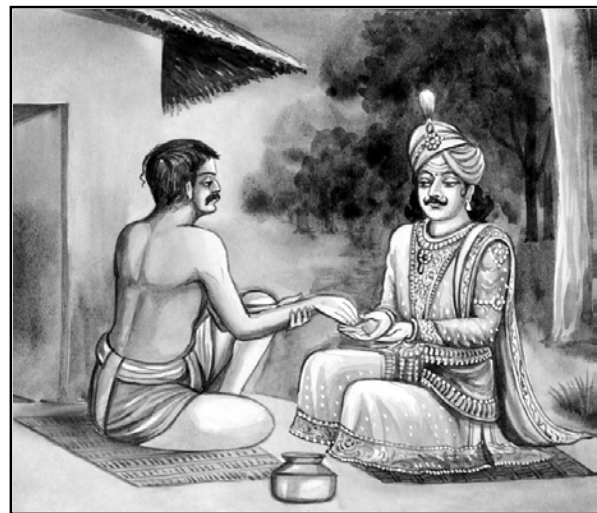
उसने नम्रतापूर्वक कहा—‘महाराज! यह झोपड़ी या भूमिका प्रश्न नहीं है। वह झोपड़ी मेरे पिता, पितामह

माताके समान है। जैसे किसी मूल्यपर, किसी प्रकार आप अपना पैतृक राजसदन किसीको नहीं दे सकते, वैसे ही मैं अपनी झोपड़ी नहीं बेच सकता।’

नरेश उदास हो गये। वह व्यक्ति दो क्षण चुप रहा और फिर बोला—‘परन्तु आपने मुझे धर्मसंकटमें डाल दिया है। देवमन्दिरके निर्माणमें बाधा डालनेका पाप मैं करूँ तो वह पाप मुझे और मेरे पूर्वजोंको भी ले डूबेगा। आप धर्मात्मा हैं, उदार हैं और मैं हीन जातिका कंगाल मनुष्य हूँ, किन्तु यदि आप मेरे यहाँ पधारें और मुझसे मन्दिर बनानेके लिये झोपड़ी माँगें तो मैं वह भूमि आपको दान कर दूँगा। इससे मुझे और मेरे पूर्वजोंको भी पुण्य ही होगा।’

‘महाराज इस हीन जातिके व्यक्तिके भूमिदान लेंगे?’ राजसभाके सभासदोंमें रोषके भाव आये। वे परस्पर काना-फूसी करने लगे।

‘अच्छा, तुम जाओ!’ महाराजने उस व्यक्तिको उस समय बिना कुछ कहे विदा कर दिया; परन्तु दूसरे



दिन काश्मीरके वे धर्मात्मा अधीश्वर उसकी झोपड़ीपर पहुँचे और उन्होंने उससे भूमिदान ग्रहण किया।



यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ (गीता ६।३०-३१)

‘जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।’

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरुढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ ‘श्रीमद्भगवद्गीता’ ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), शनिवार, दिनाङ्क १० दिसम्बर २०१६ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

—सम्पादक

## ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

जनवरी २०१७ का विशेषाङ्क ‘श्रीशिवमहापुराणाङ्क’-हिन्दी भाषानुवाद, श्लोकाङ्कसहित-प्रथम भाग, दिसम्बर २०१६ से ही भेजनेका प्रयास है। रजिस्ट्रीसे विशेषाङ्क प्राप्त करनेके लिये सदस्यता-शुल्क यथाशीघ्र भेजें।

गीताप्रेसकी दूकानोंपर भी सदस्यता-शुल्क छपी रसीद प्राप्त करके जमा कर सकते हैं। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क नवम्बरके अन्ततक प्राप्त नहीं होगा उन्हें बादमें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क भेजा जायगा।

**जनवरी सन् 2017 से ‘कल्याण’-विशेषांक अजिल्द उपलब्ध नहीं होगा।**

वार्षिक-शुल्क—₹ २२० (सजिल्द)। पंचवर्षीय-शुल्क—₹ ११०० (सजिल्द)।

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’ पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५



**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**  
  
**By**  
**Avinash/Shashi**

**Icreator of**  
**hinduism**  
**server!**

## गीता-दैनन्दिनी— ( सन् २०१७ ) के सभी संस्करण उपलब्ध

डाकखर्च

<b>पुस्तकाकार</b> —विशिष्ट संस्करण ( कोड 1431 )—गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद,	मूल्य ₹ ७० ₹ २५
” ” ( बँगला अनुवाद ( कोड 1489 ), ओड़िआ अनुवाद ( कोड 1644 ),	
तेलुगु अनुवाद ( कोड 1714 )	मूल्य ₹ ७० ₹ २५
<b>सुन्दर प्लास्टिक आवरण ( कोड 503 )</b> —गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ	मूल्य ₹ ५५ ₹ २५

<b>पॉकेट साइज—</b> प्लास्टिक आवरण ( कोड 506 )— गीता-मूल श्लोक,	मूल्य ₹ ३० ₹ २०
--	-----------------

व्यापारिक संस्थान नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।  
[ गीताप्रेसकी निजी थोक पुस्तक-दूकानोंसे थोक खरीदनेपर नियमानुसार डिस्काउण्ट भी उपलब्ध है।  
दूकानोंका पता कल्याण मईके कवर पृष्ठ ३ पर देखें। ]

## योग एवं आरोग्यपर तीन प्रमुख प्रकाशन—अब उपलब्ध

**पातञ्जलयोग-प्रदीप ( कोड 47 ) ग्रन्थाकार**—श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹ १७०

**योगाङ्क ( कोड 616 ) ग्रन्थाकार**—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्रका वर्णन है। मूल्य ₹ २००

**आरोग्य-अङ्क [ संवर्धित संस्करण ] ( कोड 1592 ) ग्रन्थाकार**—विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियों, घरेलू औषधियों तथा स्वास्थ्यरक्षापर संगृहीत अनेक उपयोगी लेखोंका संग्रह है। मूल्य ₹ २००

## गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित गोसेवापर पुस्तकें

[ ८ नवम्बर ( दिन—मंगलवार ) को गोपाष्टमी है। ]

**गो-अङ्क ( कोड 1773 )**—इस विशेषाङ्कमें सुप्रसिद्ध संत-महात्माओं एवं विद्वानोंके द्वारा प्रस्तुत गायकी महत्ता एवं उपयोगितापर उत्कृष्ट लेखोंके साथ-साथ गायके आर्थिक, वैज्ञानिक एवं धार्मिक महत्त्व तथा गोपालन एवं संरक्षणकी विधियोंका सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। मूल्य ₹ १७०

**गोसेवा-अङ्क ( कोड 653 )**—इस विशेषाङ्कमें गौसे सम्बन्धित अनेक आध्यात्मिक और तात्त्विक निबन्धोंके साथ गौका विश्वरूप, गोसेवाका स्वरूप, गोपालन एवं गोसंवर्धनकी मुख्य विधाएँ तथा गोदान आदि उपयोगी विषयोंका संग्रह हुआ है। मूल्य ₹ १३०

**गोसेवाके चमत्कार ( कोड 651 )**—गायोंकी महिमा अपार है। प्राचीनसे लेकर अर्वाचीन साहित्यतक गो-महिमासे भरे पड़े हैं। मूल्य ₹ १५ ( कोड 365 ) तमिलमें भी उपलब्ध।

**किसान और गाय ( कोड 821 )**—किसानोंके लिये व्यावहारिक शिक्षा और गोपालनकी महत्ताका एक सुन्दर विवेचन। मूल्य ₹ ४ ( कोड 1547 ) तेलुगुमें भी उपलब्ध।

**गोरक्षा एवं गोसंवर्धन ( कोड 1922 )**—प्रस्तुत पुस्तकमें गोरक्षा एवं गोसंवर्धनकी शास्त्रीय आलोकमें विलक्षण व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹ १०